॥ श्रीहरिः ॥

1435▲

आत्मकल्याणके विविध उपाय

जयदयाल गोयन्दका

॥ श्रीहरिः ॥

आत्मकल्याणके विविध उपाय

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

जयदयाल गोयन्दका

निवेदन

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका भगवत्प्राप्त युगपुरुष थे। यह पुस्तक उन्हींके प्रवचनोंका परमोपयोगी संग्रह है। वे केवल मानवमात्र ही नहीं, अपितु जीवमात्रको भगवत्प्राप्तिका अधिकारी बनाने-हेतु सतत प्रयत्नशील थे। आशा है, इस पुस्तकमें उनके द्वारा बताये आत्मकल्याणकारी सुगम उपायोंको पाठकगण मननपूर्वक पढ़कर स्वयं लाभान्वित होंगे एवं अन्य लोगोंमें भी प्रचार करके उन्हें लाभ पहुँचावेंगे।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

□□

॥ श्रीहरिः ॥

भोग दुःखरूप है

निष्कामभाव तथा निरभिमानता अमृत तुल्य है। स्कन्दपुराणमें कथा आती है कि जब इन्द्रको ब्रह्महत्याका दोष लगा, तब इन्द्र कहीं जाकर छिप गये। इन्द्रासनपर बैठनेके लिये योग्य पुरुषका चुनाव होने लगा, उस समय देवताओंने मिलकर राजा ययातिको इस पदके लिये सर्वश्रेष्ठ चुना। राजा ययातिको बुलानेपर उन्होंने सभामें अपनी खूब प्रशंसा की कि मैंने इतने यज्ञानुष्ठान, तप, स्वाध्याय, संयम, साधना की। जब राजा ययाति अपनी सब प्रशंसा एवं पुण्यकृत्योंका बखान कर चुके, तब सब देवताओंने उन्हें इन्द्रासनके अयोग्य समझा; क्योंकि अपनी अत्यधिक प्रशंसा करनेसे वह उस पदके अयोग्य बन गये। राजा ययातिके आख्यानसे हमें यह शिक्षा लेनी चाहिये कि अपने मुखसे अपनी बड़ाई करना बहुत नीची चीज है। यह बहुत बुरी एवं अत्यन्त खतरेकी चीज है। स्कन्दपुराणमें राजा ययातिके इन्द्रासनकी योग्यतासे च्युत हो जानेपर व्यासजी महाराजने उपदेश भी दिया है कि यह अभिमानका ही परिणाम है, अतः इस सम्बन्धमें विशेष सतर्क होनेकी आवश्यकता है, यह बात युक्तिसंगत व शास्त्रसम्मत है। मैंने जब कभी अपनी बड़ाई की, मुझे लघुताको ही प्राप्त होना पड़ा है। जहाँतक बन सके, अपने मुँहसे अपनी बड़ाई तो कभी करे ही नहीं, अगर अन्य कोई भी अपनी मान, बड़ाई, इज्जत करे तो लज्जित एवं भयभीत होना चाहिये। जो खतरा मान, बड़ाई, इज्जत करनेवालोंसे है, वह खतरा सिंह,

---

प्रवचन—दिनांक १४-३-१९५०, सायंकाल ४ बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

व्याघ्र आदि हिंसक पशुओंसे भी नहीं है; क्योंकि ये पशु तो मनुष्य-शरीर ही नष्ट कर सकते हैं, लेकिन मान, बड़ाई पानेकी लालसासे मनुष्यको जन्म-जन्मान्तर नरक भोगना पड़ता है एवं बारम्बार जन्म लेना पड़ता है।

निष्कामभावका पालन करनेवाला पुरुष दर्शन करनेके योग्य होता है। जहाँ स्वार्थका त्याग, सत्यता, निष्कामभाव एवं मान, बड़ाईका त्याग है। वहाँ साक्षात् भगवान्का वास है। आज एक भाईका पत्र आया है, उन्होंने इस प्रकार पूछा है—

प्रश्न—मैं ईश्वरकी भक्ति, उपासना, ध्यान वगैरह करता हूँ, लेकिन भगवान् मेरी एक भी बात नहीं सुनते, इसके विपरीत जो आदमी घोर नास्तिक, दुराचारी, पापी, हर तरहसे अवगुणोंसे भरे हैं, जिनकी ईश्वरपर कोई आस्था नहीं, उन लोगोंको सब प्रकारकी भोग्य-सामग्री एवं ऐश-आराम उपलब्ध हैं। उनको किसी भी चीजका अभाव नहीं और मुझे सुखसे खानेके लिये रोटी भी नसीब नहीं है, जबकि मैं भगवान्से इसके लिये सकामभावसे प्रार्थना करता हूँ।

इसका उत्तर मैंने उक्त सज्जनको इस प्रकार दिया है—आपपर भगवान्की अपार दया है, रुपया-पैसा आदि सांसारिक सुखोंसे सम्पन्न व्यक्तिको खतरा है। सांसारिक ऐश-आराममें सुखकी कल्पना करना मूर्खता है। अच्छा वैद्य रोगीको कभी कुपथ्य नहीं दे सकता। आपको भगवान्ने सांसारिक भोगरूपी कुपथ्य प्रदान नहीं किया, यह आपको अपनेपर ईश्वरकी विशेष दया समझनी चाहिये। आपके द्वारा सांसारिक सुख भगवान्से माँगनेपर भी भगवान् नहीं देते, यह तो उनकी दयाकी पराकाष्ठा है। श्रीनारदजीने अपना विवाह करवानेके लिये भगवान्से भगवान्के स्वरूपकी याचना की, लेकिन भगवान् अपने भक्तोंको कुपथ्य

किस प्रकार दे सकते हैं। उन्होंने उनको हरि अर्थात् बन्दरका रूप दे दिया, दयाके सागर भगवान्ने उनका दिया हुआ शाप भी ग्रहण कर लिया। जिस प्रकार छोटा बच्चा अपनी माँसे रो-रोकर कुपथ्य माँगता है, किन्तु माँ बच्चेके हितकी दृष्टिसे उसको कुपथ्य नहीं देती, इसपर बच्चा रोता है, लेकिन माता उसकी न तो परवाह ही करती है और न बुरा ही मानती है। सांसारिक भोग्य-सामग्रियोंसे तो सिर्फ क्षणिक शान्ति मिल सकती है, क्योंकि सांसारिक भोग क्षणभंगुर एवं अनित्य हैं। सच्ची शान्ति तो भगवान्‌के भजन, ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय एवं संयमसे ही मिल सकती है। कुन्तीने जब भगवान्‌की भक्ति की, तब भगवान् श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर कुन्तीसे वरदान माँगनेके लिये कहा, तब कुन्तीने जवाब दिया कि विपत्तिकालमें आपकी स्मृति विशेष रूपसे रहती है। अतः मुझपर हर समय विपत्तिकाल ही बना रहे, ताकि आपकी स्मृति बराबर बनी रहे—

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥
सुखके माथे सिल पड़ो जो नाम हृदयसे जाय।
बलिहारी वा दुखकी जो पल पल नाम रटाय॥

जिस सुखके कारण भगवन्नामकी विस्मृति होती हो, ऐसे सुखपर वज्रपात हो जाय। उस दुःखकी बलिहारी है जिसकी दयासे हर एक क्षण भगवान्‌का स्मरण बना रहे, वास्तवमें ऐसा दुःख हितकारी है। अर्जुन और युधिष्ठिर दोनोंने ही भगवान् श्रीकृष्णकी भक्ति की, भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको पचीस वर्षका वनवास एवं युधिष्ठिरको तेरह वर्षका वनवास दिया। अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णका युधिष्ठिरकी अपेक्षा विशेष भक्त था, अतः भगवान्ने अर्जुनको विपत्तिस्वरूप वनवासकी विशेष अवधि

प्रदान की। विपत्तिकालमें भगवान्‌का स्मरण विशेषरूपसे होता है। आप सभी उपस्थित सज्जन इस बातका अनुभव करते होंगे कि अपने घरकी अपेक्षा स्वर्गाश्रम-गीताभवनमें भगवान्‌का साधन विशेष बनता है एवं गीताभवनकी अपेक्षा वटवृक्षके नीचे एवं जंगलमें और भी विशेषरूपसे ध्यान लगता है; क्योंकि गीताभवनमें भी एक प्रकारसे राजसी ठाठ ही है। जो भगवत् उपासनाजन्य सुख है, वह सात्त्विक एवं स्थिर है और सांसारिक विषयजन्य सुख अस्थिर एवं क्षणभंगुर है, अतः सांसारिक सुखोंसे दूर रहना अच्छा है। जब भगवान् किसीसे सांसारिक सुख छीन लें तब भगवान्‌की विशेष दया समझनी चाहिये। रुपया-पैसा साक्षात् पापका ही स्वरूप है। रुपयोंको ऐश-आरामके उपकरण जुटानेके लिये लगानेसे पापकी सृष्टि होती है। रुपयोंके कमानेमें, उनकी रक्षा करनेमें, उनका त्याग करनेमें दुःख-ही-दुःख है।

अर्थस्य साधने सिद्धे उत्कर्षे रक्षणे व्यये।
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम्॥
स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयो मदः।
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च॥

(श्रीमद्भागवत ११। २३। १७-१८)

धन कमानेमें, कमा लेनेपर उसको बढ़ाने, रखने एवं खर्च करनेमें तथा उसके नाश और उपभोगमें—जहाँ देखो वहीं निरन्तर परिश्रम, भय, चिन्ता और भ्रमका ही सामना करना पड़ता है।

चोरी, हिंसा, झूठ बोलना, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जूआ और शराब—ये सब धनसे होनेवाले अनर्थ हैं।

इसी प्रकार सन्तानके सम्बन्धमें समझना चाहिये। लड़का

गर्भमें हो तो दुःख, बीमार हो तो दुःख, मर जाय तो दुःख, बड़ा होकर मनके अनुकूल व्यवहार न करे तो दुःख-ही-दुःख है। मुझे सन्तान नहीं है तो बहुत सुख है, अन्यथा न मालूम सन्तानोत्पत्तिका क्या परिणाम होता। जिन लोगोंके पास पैसा है उनकी बड़ी दुर्दशा है। वे लोग झूठ, कपट, बेईमानी, सरकारकी चोरीसे रुपया कमाते हैं, उनको साक्षात् यमराजकी भाँति सेलटैक्स एवं इनकमटैक्स अधिकारियोंसे दिन-रात भय लगा रहता है, तथा पापसे पैदा किये हुए इस प्रकारके धनकी रक्षाके लिये नित्य-निरन्तर चोर-डाकुओंका भी भय लगा रहता है। इस तरह पैसेवाला आदमी कभी सुखकी नींद सो भी नहीं सकता। दिन-रात उसको पैसेके संचय एवं उसकी रक्षाका ही स्मरण-चिन्तन लगा रहता है। इसी प्रकार सन्तानके विषयमें समझना चाहिये। जिन स्त्रियोंको सन्तान नहीं है, भगवान्ने उनपर बड़ी भारी कृपा की; लेकिन भगवान्के मंगलमय विधानको न समझकर सुखकी आकांक्षासे स्त्रियाँ दूसरेको गोद लेती हैं। परिणाम भी प्रायः प्रत्यक्ष ही मिल जाता है, सन्तानमें सुख कहाँ? संसारके सभी भोग एवं इन्द्रियजन्य सुख तो प्रत्यक्ष दुःखदायी हैं। एक बारके संभोगसे मनुष्यके बल, वीर्य, स्मरण-शक्ति एवं ओजका अत्यधिक नाश होता है एवं परिणामस्वरूप आयुका शीघ्र विनाश होकर मनुष्य नरकगामी होता है। विवेकी, समझदार पुरुषोंके लिये सांसारिक सुख दुःखके समान हैं। अविवेकी पुरुष सांसारिक सुखोंको ही वास्तविक सुख समझकर उनमें रमण करता है। इस प्रकार सांसारिक सुखोंको सब कुछ समझनेवालोंके लिये गुणवृत्ति विरोधसे भी दुःख होता है। गुणवृत्ति विरोध—जिस प्रकार अपने किसीमें पाँच हजार रुपये बाकी हैं, रुपया देते समय उसका विश्वास करके रुपया तो

आपने दे दिया, लेकिन प्रमाणके लिये कोई रसीद उनसे नहीं ली। उक्त व्यक्ति जब रुपया देनेसे इनकार करता है तब उससे रुपया वसूल करनेके लिये कानूनी कार्यवाही करनेके लिये आप न्यायालयमें जाते हैं। न्यायाधीश कहता है कि दो गवाह पेश करो। अपने पास कोई सच्चा गवाह तो है नहीं, उस समय गुणवृत्ति विरोध पैदा होता है। एक तरफ तो सात्त्विक वृत्तियाँ कहती हैं—पाँच हजारकी रकम भले ही चली जाय, लेकिन हमें झूठा गवाह पेश करके अपना धर्म नष्ट नहीं करना चाहिये, दूसरी तरफ राजसी मनोवृत्तियाँ कहती हैं, असलमें अपना रुपया बाकी है, अतः अभी '**येन केन प्रकारेण**' इनसे रुपया वसूल कर लेना चाहिये। भविष्यके लिये खयाल रखा जायगा। इस प्रकार रुपयोंकी रक्षाके लिये दुःखमूलक सात्त्विक एवं राजसी वृत्तियोंका विरोध पैदा होता है। गीतामें भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! इन्द्रिय एवं विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सभी भोग सुख-दुःखके कारणस्वरूप हैं। ये सुख आदि-अन्तवाले उत्पत्ति-विनाशशील होनेके कारण क्षणिक और अनित्य हैं। विवेकी पुरुष इस प्रकारके सुखोंमें रमण नहीं करता, दूर ही रहता है। जिस प्रकार पतंगा दीपकमें सुखकी कल्पना करके उसके पास जाता है और वह दीपक सुखके बदलेमें उसके प्राणोंका घातक सिद्ध होता है। इसी प्रकार सांसारिक क्षणभंगुर सुखोंमें लिपायमान पुरुष सुखोंकी प्राप्तिमें भटकता है। अन्तमें कालस्वरूप सांसारिक सुख मनुष्यको निगल जाते हैं। इस प्रकारका विषयासक्त पुरुष जानवरोंका भी जानवर कहलाने योग्य

है; क्योंकि जानवरोंमें तो कर्तव्यकी निर्णयात्मक बुद्धि नहीं होती, वे तो भोगयोनिमें हैं। मनुष्यको सब प्रकारकी जानकारी होते हुए भी भले, बुरे कामके परिणामके लिये निश्चयात्मक बुद्धिके विद्यमान रहनेपर भी जब वह इस प्रकारकी भयंकर गलती करे तो उसे जानवरोंका जानवर कहना अत्युक्ति नहीं है।

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाको बहुत बुरी चीज समझना चाहिये। बड़ाई करनेवालोंको हितैषी न समझकर डुबोनेवाला समझना चाहिये। इसके विपरीत निन्दा एवं अपमानको अमृतके समान समझना चाहिये एवं इनकी प्राप्तिमें भगवान्‌की बड़ी भारी दया समझनी चाहिये, किन्तु अपमान एवं निन्दाके पात्र बननेलायक कार्य नहीं करने चाहिये।

बीमारीकी प्राप्तिमें भी बहुत लाभ है। उदाहरण—चूरूमें घनश्यामको जब विशेष बुखार था, तब घनश्यामने कहा—मुझसे सांसारिक बातें मत करो, लेकिन जब स्वास्थ्य कुछ ठीक हो गया तो फिर सांसारिक वातावरणमें पूर्ववत् लिपायमान हो गया। इस प्रकार विपत्तिकालमें उसे भगवान्‌का विशेष स्मरण एवं सांसारिक कार्योंसे स्वाभाविक विरक्ति थी। मनुष्यको जब अपनी मृत्युका खयाल रहता है तब उससे प्रायः पापकर्म नहीं बनते। श्रीनारायण स्वामीने कहा है—

दो बातन को भूल मत, जो चाहै कल्यान।
नारायण एक मौत को, दूजे श्रीभगवान॥

मृत्युको याद रखनेसे पापकर्म नहीं बनते एवं भगवान्‌की स्वाभाविक स्मृति होती है। बीमारीकी प्राप्तिसे चार लाभ विशेष प्रकारसे होते हैं—

१-मृत्युको स्मरण रखनेसे पापकर्म नहीं बनते।

२-भगवान्‌का स्मरण बनता है।

३-बीमारीको भोगनेसे पाप नष्ट होते हैं।

४-बीमारीमें शरीर अशक्त रहता है, अतः सांसारिक विषय-भोगोंसे मनुष्य डरता है।

इसलिये किसी भी प्रकारके रोगको तपस्याके समान समझकर सहन करना चाहिये। उसको सहन करनेसे तपस्या करनेका लाभ एवं सहन-शक्तिकी वृद्धि होती है। संकट उपस्थित होनेपर भगवान्‌की विशेष दया समझनी चाहिये। जो मनुष्य सांसारिक भोगोंमें सुख मानते हैं वे मूर्ख हैं। सांसारिक भोग अनित्य, वियोगमूलक, क्षणभंगुर एवं झूठे हैं एवं ईश्वरके सम्बन्धसे प्राप्त होनेवाला सुख नित्य, सत्य, शाश्वत, सनातन, अपरिमेय है। अतः सांसारिक सुखोंको लात मार देनी चाहिये। सांसारिक भोगोंकी कामना भी खतरेकी चीज है। मनमें जब कामनाकी उत्पत्ति होती है तभी क्लेश होता है, अतः निष्कामभावके समान दामी कोई चीज नहीं है।

भगवान् गीतामें कहते हैं—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

(गीता २। ६६)

जिस पुरुषमें आध्यात्मिक आस्था नहीं, वह अयुक्त अर्थात् साधनहीन है। इस प्रकारके अयुक्त पुरुषमें श्रद्धा नहीं होती, श्रद्धाके अभावसे भगवान्‌का चिन्तन नहीं होता, ऐसे भावना एवं श्रद्धाहीन पुरुषको शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती एवं शान्तिके बिना सुखकी प्राप्ति कहाँ?

मिथ्या वस्तुको त्यागकर सत्य, सनातन वस्तुको ग्रहण करना चाहिये। उदाहरणके तौरपर जैसे मारवाड़में वृतेश्वरी ब्राह्मण अपने यजमानोंसे जीवनभरके लिये मासिक वृत्ति लेना विशेष

पसन्द करता है, हजार, दो हजार रुपयोंको छोड़ देता है; क्योंकि मासिक वृत्ति जीवनभर मिलेगी, जिससे जीवनभर भरण-पोषण होगा और हजार, दो हजार तो एक बार ही मिलेगा।

उपरोक्त उदाहरण भगवत्प्राप्तिके मुकाबले तो नगण्य ही है, लेकिन उदाहरण देकर समझाया गया है। इन सब बातोंको सोचकर मिथ्या सुखका त्याग करना चाहिये। जिस प्रकार एक चींटी अपने मुखमें नमकका कंकर लेकर चीनीके पहाड़परसे भी चली जाय तो भी उसको चीनीका रसास्वादन असम्भव है, उसी प्रकार जबतक मनुष्यको विषय-भोगोंका साथ है, तबतक परमेश्वरसम्बन्धी सुख एवं आनन्दका लाभ अप्राप्य एवं असम्भव है। इसलिये मिथ्या सुखको त्यागकर सच्चे सुखका ही आश्रय ग्रहण करना चाहिये। स्वयं भगवान् गीतामें कहते हैं—

ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च॥

(गीता १४। २७)

क्योंकि उस अविनाशी परब्रह्म और अमृतका तथा नित्यधर्मका और अखण्ड एकरस आनन्दका आश्रय मैं हूँ।

ब्रह्म, अमृत, अव्यय, शाश्वत धर्म तथा एकान्तिक सुख—सब परमात्माका ही स्वरूप है। निद्रा, आलस्य, भोग, दुर्गुण, दुराचार, पापको विषके समान समझकर उनका त्याग कर देना चाहिये तथा भजन, ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय, संयमको अमृतके समान समझकर इनका सेवन करना चाहिये।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

वैराग्य एवं प्रेमका विवेचन

कुछ महत्त्वपूर्ण बातें बतलायी जाती हैं, ये बातें परमात्माकी प्राप्तिमें विशेषरूपसे सहायक हैं। भगवान्‌में श्रद्धा एवं प्रेम साक्षात् भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाले हैं। इसलिये भगवान्‌में श्रद्धा एवं प्रेम पैदा करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। अगर भगवान्‌में अनन्य प्रेम हो तो भगवान्‌की प्राप्तिमें एक क्षणका भी विलम्ब नहीं हो सकता। प्रेम एवं भक्ति एक ही चीज है। ईश्वरमें परम अनुराग अर्थात् विशुद्ध प्रेमका ही नाम भक्ति है—'**परानुभक्ति ईश्वरे**' (पातंजलयोगदर्शन)। गीतामें भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(गीता ११। ५४)

हे कौन्तेय! हे परंतप अर्जुन! मैं अनन्यभक्तिसे साक्षात् दर्शन दे सकता हूँ तथा तत्त्वसे जाना जा सकता हूँ तथा भेद, अभेद-रूपसे समझा जा सकता हूँ। एक अनन्यभक्तिके साधनस्वरूप भगवान्‌ने इतने फल बतलाये हैं। भगवान्‌में प्रेम अनन्य एवं विशुद्ध होना चाहिये। भगवान्‌से भगवान्‌के लिये ही प्रेम करनेको विशुद्ध प्रेम कहते हैं। उसीको अनन्य प्रेम व निष्कामभाव कहते हैं। कामनाका जिसमें अत्यन्त अभाव हो, वही निष्काम प्रेम है। निष्कामभाव ही सबसे उच्चकोटिका साधन है।

समता यानी सबमें समभाव होना चाहिये। समभावमें राग-द्वेषादिका स्वतः ही अभाव है। जहाँ राग-द्वेष हैं वहाँ समभाव असम्भव है, जहाँ समभाव है वहाँ राग-द्वेषादिका अस्तित्व नहीं है। समता ही ज्ञानी पुरुषोंकी कसौटी है। समताकी सिद्धिके

प्रवचन—दिनांक १५-३-१९५०, प्रातःकाल ९ बजे, स्वर्गाश्रम।

बिना किसी भी योगी, भक्त एवं साधकका अस्तित्व नहीं है। समताके अभावमें परमात्माकी प्राप्ति असम्भव है। समताकी सत्तामें ही सब गुणोंकी स्थिति है। गीतामें भगवान् समताकी व्याख्या करते हैं—

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

(गीता १२। १८-१९)

शत्रु-मित्र, मान-अपमान, सर्दी-गर्मी, सुख-दुःख सबमें समान भाव तथा आसक्तिरहित, निन्दा तथा प्रशंसामें समान भाव, मननशील, भगवान्‌के हर विधानमें सन्तुष्ट, शरीररूपी घरमें मेरेपनका अभाव, धर्मका त्याग करनेवाली चंचल बुद्धिसे रहित, ऐसे भक्तिमान् पुरुषके लिये भगवान् अपनेको समर्पण करते हैं। भगवान्‌में परम श्रद्धा हो जानेपर अन्य किसी भी साधनकी आवश्यकता नहीं रहती, भगवत्-साक्षात्कार, ज्ञानप्राप्ति, शान्तिकी उपलब्धिमें श्रद्धा ही प्रधान कारण है, अतः भगवान्‌में श्रद्धा बढ़ानी चाहिये। परमात्मामें श्रद्धा, विश्वास होनेके साथ ही उनका साक्षात्कार हो सकता है, विलम्बका काम नहीं है। अनन्य प्रेम, श्रद्धा एवं समता तीनों बहुत मूल्यवान् चीजें हैं। इसी प्रकार वैराग्य भी बहुत मूल्यवान् है। सर्दी पड़े तो उसकी निवृत्तिके लिये कम्बल ओढ़ना चाहिये, चाहे कम्बल फटी, पुरानी, मोटी, पतली कैसी भी हो, कम्बल नीले रंगकी नहीं होनी चाहिये और कोई भी रंग हो सकता है, कम्बल वगैरह साफ भी होनी चाहिये। स्वामीजी फटे कपड़े पहनें तो उनकी इज्जत बढ़ेगी ही, फटे-पुराने कपड़े वैराग्यके उत्पादक हैं एवं साधुताके भावका

बोध करानेवाले हैं, साधुके लिये रेशमी, महीन, सुन्दर वस्त्र वैराग्यमें कलंक हैं। साधुके लिये तो मोटा एवं फटा-पुराना कपड़ा ही आदर्श है। पुराने चिथड़ोंको सिलकर पहननेसे स्वाभाविक वैराग्यकी उत्पत्ति होती है। साधुओंका कोई भी वस्त्र कीमती नहीं होना चाहिये। साधुओंको भूमिपर कम्बल या चट्टी बिछाकर शयन करना चाहिये, अथवा बिना कुछ बिछाये ही शयन करना चाहिये, इससे वैराग्यके साधनमें वृद्धि होती है। श्रीभर्तृहरिका वैराग्यशतक एवं योगवासिष्ठका वैराग्य-प्रकरण मनन करनेयोग्य है। श्रीभर्तृहरिजी कहते हैं—

महीरम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासङ्गमुदितः
सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव॥

(वैराग्यशतक ६६)

भूमि ही जिसके लिये रमणीय शय्या है, अपनी भुजा ही जिसके लिये अच्छा तकिया है, आकाशरूपी चँदोवा ही जिसका भवन है, वायु ही जिसके लिये अनुकूल पंखा है, चन्द्रमाकी ज्योत्स्ना ही जिसके लिये प्रकाशमान् दीप है, मूर्तिमान् वैराग्य ही जिसकी सहधर्मिणी पत्नी है, ऐसा मुनि विपुल ऐश्वर्यशाली राजाकी तरह शान्ति और सुखसे शयन करता है।

वैराग्य उच्चकोटिकी चीज है। सांसारिक पदार्थोंसे हटकर वैराग्य धारण करना चाहिये। कंचन एवं कामिनीका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। कुटुम्ब एवं घर-बारसे वृत्ति उठनेके साथ-साथ बहिर्मुखी वृत्ति स्वाभाविक ही अन्तर्मुखी हो जाती है। विषयोंसे सम्बन्ध-विच्छेदका नाम प्रत्याहार है। वैराग्य होते ही उपरति अपने-आप हो जाती है। एक तरफ सारे ब्रह्माण्डका सांसारिक

सुख एवं दूसरी तरफ विषयोंसे उपरति तथा परमात्मामें ध्यानके सुखके सामने सांसारिक ब्रह्माण्डका सुख समुद्रमें एक बूँदके समान भी नहीं है। पहले संसारसे उपरामता हो तब विषयोंसे वैराग्य होकर भगवान्‌में अनन्य प्रेम होता है। '**सङ्गात् सञ्जायते कामः**' यदि भगवान्‌से मिलनेकी तीव्र इच्छा पैदा हो जाय तो भगवान्‌के तुरन्त दर्शन हो सकते हैं। भगवान्‌से मिलनेकी तीव्र इच्छा पैदा होनेपर भोगोंसे स्वाभाविक उपरामता हो जाती है। तीव्र इच्छा बाकी सब साधन स्वतः करा लेती है। जिस प्रकार रुपयोंकी तीव्र इच्छा होनेपर उसकी प्राप्तिके बाकी साधन मनुष्य अपने-आप जुटा लेता है। वैसे ही भगवान्‌से मिलनेके लिये तीव्र इच्छाका पैदा होना ही पहली सीढ़ी है। वेदान्तशास्त्रमें भगवान्‌से मिलनेके चार साधनोंमें इसे अन्तिम साधन बतलाया गया है। जब आपमें भगवान्‌से मिलनेकी तीव्र इच्छा पैदा हो जायगी, तब क्या भगवान्‌में आपसे मिलनेकी तीव्र इच्छा पैदा नहीं होगी? तीव्र इच्छा होनेपर भगवान्‌से साक्षात्कार कर लेनेकी अपनी तो सामर्थ्य नहीं है, लेकिन क्या भगवान्‌की भी तीव्र इच्छा होनेपर हमें दर्शन देनेकी सामर्थ्य नहीं है?

भगवान्‌का आना तीव्र इच्छा होनेपर ही सम्भव है। यह भी एक उच्चकोटिका साधन है। जब मनमें वैराग्य होता है तब स्वाभाविक ही भगवान्‌से मिलनेकी तीव्र इच्छा पैदा होती है। जिस प्रकार भर्तृहरिके चित्तमें उपरोक्त उद्‌गार पैदा हुए, वैसे ही विषयोंसे उपरति होनेपर आपके मनमें भी इस प्रकारके भाव पैदा हो सकते हैं। इस प्रकारके उद्‌गार पैदा होनेपर महल और कोठियाँ, बाग-बगीचे अच्छे नहीं लगते, उस समय वन, पर्वत, गुफा एवं गंगाका किनारा ही रुचिप्रद लगता है। चित्तमें उपरतिका आनन्द लौकिक होनेपर भी अलौकिक है, क्योंकि यह

सात्त्विक आनन्द है। इसका एक बार अनुभव होनेपर यह छूट नहीं सकता चाहे प्राण भले ही चले जायँ। वैराग्यकी तीन श्रेणियाँ हैं—तीव्र वैराग्य, तीव्रतर वैराग्य और तीव्रतम वैराग्य। शास्त्रोंमें इनके अनेकों उदाहरण मिलते हैं। पातंजलयोगदर्शनमें सांसारिक पदार्थोंमें प्रीतिके अभावको वैराग्य बतलाया गया है। वैराग्य जब तीव्र हो जाता है, तब साधकके सात्त्विक गुणोंसे भी वैराग्यकी वृद्धि होती है। जैसे-जैसे वैराग्यकी वृद्धि होती है, वैसे-वैसे गुणोंमें भी तृष्णा एवं प्रीतिका अभाव हो जाता है, ऐसे वैराग्यको तीव्रतर वैराग्य कहते हैं और जब साधकका गुणोंसे सम्बन्ध ही विच्छेद हो जाता है, साधककी उस अवस्थाको तीव्रतम वैराग्य कहा जाता है। संसारसे उपरति भी तीव्र, तीव्रतम और तीव्रतर तीन प्रकारकी होती है।

तीव्र वैराग्य उपरतिका उदाहरण—

राजा रहूगणने जड़भरतको अपनी पालकीमें जोत दिया, वे बिना कुछ भी कहे चले जा रहे हैं, चाहे जैसे उनको जोत दो, यह तीव्र उपरति है। जड़भरतको पालकीमें जोत देनेपर जड़भरत नीचे देखकर चलते थे ताकि किसी प्राणीकी हिंसा न हो जाय, इससे पालकीके सम रहनेमें असुविधा हो रही थी। परिणामस्वरूप जब पालकी डोलने लगी तब राजाने अपने अनुचर कहारोंको फटकार कर कहा कि तुम पालकी किस प्रकार ले जा रहे हो, मुझे कष्ट हो रहा है। तब राजाके अनुचरोंने उत्तर दिया कि पालकीमें यह एक नया कहार आगे लगा है, उसीके अनुरूप हमें चलना पड़ता है इसीलिये गड़बड़ी होती है। तब राजा रहूगणने जड़भरतको फटकार कर कहा कि मैं राजा हूँ तू सेवक है, ठीकसे चल, अन्यथा मैं दण्ड दूँगा। रहूगणको जड़भरतने उत्तर दिया कि आप सेवक और स्वामीकी क्या बात कहते हैं। आप

कहते हैं कि मैं तुमपर सवार हूँ, इसलिये मैं बड़ा हूँ तुम छोटे हो। मेरे पैरोंके नीचे पृथ्वी है, पृथ्वीपर मेरे पाँव, पैरोंपर जंघा, जंघाओंपर शरीर, शरीरपर यह पालकी, पालकीपर आप विराजमान हैं। आपपर मुकुट, मुकुटपर यह सब आकाश है, फिर नीचा-ऊँचा एवं छोटे-बड़ेका सवाल कैसा? आप कहते हैं कि मैं तुमको मारूँगा, आत्माका नाश तो हो नहीं सकता और नश्वर शरीर विनाशशील है ही, फिर आप किसे मारेंगे? इस प्रकारके ज्ञानयुक्त वचन सुनकर राजा रहूगणने सोचा, यह तो कोई वैरागी है और उनसे क्षमा माँगी और कहा कि मैं उपदेश लेनेके लिये कपिल मुनिके आश्रममें जा रहा था, रास्तेमें आप मिल गये, अब आप मुझे उपदेश दीजिये। तब जड़भरतने कहा कि जब आपको पालकीमें चलते हुए भी कष्ट होता है तब आपको उपदेश किस प्रकार दिया जाय, तब राजाने पालकी छोड़ दी और पैदल चलने लगा। यह वैराग्यकी तीव्र दशाका उदाहरण है, क्योंकि जड़भरत भी रहूगणसे जवाब-सवाल करते हैं और उनकी बातोंपर ध्यान देते हैं। अतः यह भी तीव्रतर वैराग्यका उदाहरण नहीं समझा जा सकता।

तीव्रतर वैराग्यका उदाहरण—

स्त्रियाँ जलमें स्नान कर रही हैं, इतनेमें श्रीशुकदेवजी महाराज कहींसे विचरण करते हुए उधरसे आ निकले, लेकिन स्त्रियोंने उनसे किसी प्रकारकी लज्जाका व्यवहार नहीं किया, इतनेमें ही शुकदेवजीके पिता श्रीवेदव्यासजी भी वहाँ आ गये, उनको देखकर स्नान करती हुई सब स्त्रियोंने कपड़े आदि पहननेका स्त्री सुलभ लज्जाका उपकरण किया, इसपर श्रीवेदव्यासजीने उन स्त्रियोंसे पूछा कि मेरा लड़का बिलकुल जवान एवं नंगी हालतमें इधरसे निकला, लेकिन उसके सामने तुमने लज्जाका कोई हाव-

भाव प्रदर्शित नहीं किया और मैं वृद्धावस्थाकी हालतमें परिधान पहने हुए जब इधरसे निकला, तब तुमलोगोंने कपड़े पहननेका उपकरण किया। इसका क्या कारण है? उन स्त्रियोंने उत्तर दिया कि आप भी विरक्त हैं और शुकदेवजी भी विरक्त हैं। आपको यह तो ज्ञान था ही कि हम वस्त्रहीन हैं, लेकिन शुकदेवजीको यह भी ज्ञान नहीं कि ये स्त्री हैं या पुरुष या अन्य प्राणी। इस प्रकार उनको आपसे बढ़कर उपरति है। तब वेदव्यासजीकी शंकाका समाधान हुआ। श्रीशुकदेवजी जब परीक्षित्के दरबारमें जाते हैं, तब मार्गमें लड़के उनकी अवधूत दशाको देखकर, उनको पागल समझकर उनपर मिट्टी, कंकड़, धूल, कीचड़ वगैरह डालते हैं, लेकिन वे उसकी परवाह नहीं करते। वह सब उनके देहपर उसी प्रकार पड़ा है, ऐसी ही हालतमें शुकदेवजी महाराज परीक्षित्की राजसभामें पहुँचते हैं। उस समय उनको देखकर सब ऋषिसमुदाय उनके सम्मानके लिये खड़ा हो जाता है और आकाशसे पुष्पवृष्टि होती है। तब विस्मित होकर राजा परीक्षित्ने पूछा—आप सब लोग शुकदेवजीके आते ही खड़े क्यों हो गये, शुकदेवजी आयुमें छोटे हैं, आपलोग आयुमें बड़े हैं? तब ऋषिसमुदायने उत्तर दिया कि हमलोगोंमें अवस्था प्रधान नहीं समझी जाती, गुण प्रधान समझे जाते हैं। श्रीशुकदेवजीमें जैसा वैराग्य है वैसा वैराग्य हमलोगोंमें किसीमें नहीं है।

जब शुकदेवजी राजा जनकके पास उपदेश लेने गये, तब विदेह राजा जनकने अपने महलमें जवान, जवान सुन्दर स्त्रियोंको आदेश दिया कि शुकदेवजीको खूब चन्दन, पुष्प, सुगंधादिसे युक्त जलसे स्नान-उबटन करवाओ। उन स्त्रियोंने राजा जनककी आज्ञाका अक्षरशः पालन किया। स्नान करा चुकनेके बाद राजा जनकने उन स्त्रियोंसे पूछा कि शुकदेवको आसक्त करनेमें वे क्यों

असफल रहीं। तब उन्होंने उत्तर दिया—हमारे किसी प्रकारके हाव, भाव, क्रिया एवं किसी भी अन्य उपक्रमके प्रति उनकी कोई दिलचस्पी नहीं थी, चाहे जैसे उनको स्नान करा दो, इनपर किसी चीजका प्रभाव नहीं पड़ता। पत्थरपर जोंकका कोई असर नहीं होता। स्नान करनेके बाद जब शुकदेवजी राजा जनकके पास पहुँचे और राजा जनकसे कहा कि मेरे पिताजीने आपके पास मुझे उपदेश लेनेके लिये भेजा है, तब राजा जनकने कहा कि आपको मैं क्या उपदेश दूँ? आप तो मुझसे भी बढ़कर हैं।

योगवाशिष्ठमें इस प्रकार कथा आती है कि शुकदेवजी राजा जनकके पास उपदेश लेने जनकपुर गये, वहाँ द्वारपालने राजा जनकसे कहलवाया कि शुकदेवजी बाहर खड़े हैं। इसपर राजा जनकने द्वारपालसे कहा कि खड़े रहने दो। श्रीशुकदेवजी सात रात, सात दिनतक वहींपर खड़े रहे। आठवें दिन राजा जनकने द्वारपालसे पूछा कि वे बाहर खड़े हैं या नहीं, उनको विकार पैदा हुआ या नहीं, उनको किसी प्रकारका क्रोध आया या नहीं? द्वारपालके उत्तर देनेपर शुकदेवजीको राजा जनकने अपने दरबारमें बुलाया और पूछा आप किसलिये पधारे? श्रीशुकदेवजीने कहा कि मेरे पिताजीने आपके पास मुझे उपदेश लेनेके लिये भेजा है। शुकदेवजीको राजा जनकने ब्रह्मका तत्त्व बतलाया। इसपर शुकदेवजीने कहा कि आपने जैसा ब्रह्मका तत्त्व मुझे बतलाया है, वैसा ब्रह्मका तत्त्व तो मुझे पिताजीने भी बतलाया था, यह तो मेरी समझमें आ गया, लेकिन परम शान्ति किस प्रकार मिले यह समझाइये, तब राजा जनकने कहा कि आपकी स्थिति मुझसे बढ़कर है। यद्यपि मेरी विषयोंमें कोई आसक्ति नहीं है फिर भी मैं इनसे सम्बन्ध रखता हूँ, लेकिन आप तो विषयोंसे सम्बन्ध ही नहीं रखते, बाहर और भीतर दोनों तरफसे विषयोंका

त्याग कर रखा है, तब शुकदेवजीने कहा, मुझे शान्ति नहीं मिली, राजा जनकने कहा कि आप अभी यह समझते हैं कि मुझे साधनमें और आगे बढ़ना चाहिये, लेकिन आपको अब और साधन करनेकी आवश्यकता नहीं। आप एकान्तमें जाकर ध्यान लगाइये, आपको शान्ति मिल जायगी। अभी आपमें और आगे बढ़नेकी जो इच्छा है उसीके कारण शान्ति रुकी हुई है। तब शुकदेवजीने एकान्तमें जाकर ध्यान लगाया और उनको शान्ति मिल गयी, इच्छाका (जिज्ञासुभाव) अत्यन्त अभाव हो गया। यह उदाहरण तीव्रतर उपरति एवं वैराग्यका समझना चाहिये। शुकदेवजीका उदाहरण भी तीव्रतम वैराग्यका नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उनको राजा परीक्षित्‌की सभाका ज्ञान तो था ही तथा राजा जनकसे भी उत्तर-प्रत्युत्तर करनेका ज्ञान था, तीव्रतम वैराग्यमें इस अवस्थाका भी अत्यन्त अभाव हो जाता है।

तीव्रतम वैराग्यका उदाहरण—

श्रीऋषभदेवजी जंगलमें जा रहे हैं, बाँसोंके जंगलमें आपसमें टक्कर लगनेसे आग लग जाती है। चारों तरफ आगकी गहरी लपटें लग रही हैं, उनको न तो जंगल एवं आगकी लपटोंका ही ज्ञान है और न अपने शरीरका ही ज्ञान है। शरीर जंगलमें आगकी लपटोंसे जलकर भस्म हो जाता है, इसे तीव्रतम वैराग्य कहते हैं। इसी प्रकार प्रेमके भी तीन प्रकार हैं—गौण प्रेम, मुख्य प्रेम एवं अनन्य प्रेम।

प्रेमास्पदका वियोग सहन न हो इसीको प्रेम कहते हैं। हमारा प्रेम भगवान्‌में गौणरूपसे है एवं सांसारिक पदार्थोंमें मुख्य-रूपसे। हमलोगोंको सांसारिक भोग पदार्थ प्रिय हैं, भगवान् नहीं। हमलोगोंसे भोगोंका अधिक चिन्तन होता है, अतः उनका वियोग होना मुश्किल हो रहा है। इसीलिये हम विषयोंसे वियोग नहीं

सह सकते और भगवान्‌का वियोग सहन कर सकते हैं, लेकिन यदि सांसारिक पदार्थोंसे हमारा प्रेम गौण होकर भगवान्‌से प्रेम मुख्य हो जाय तो विषयोंसे वैराग्य हो जाता है। रागका अभाव हो जानेपर सांसारिक भोग अच्छे नहीं लगते, उस समय भगवान्‌की स्मृति ही अधिक समय होती है, भगवान्‌को अल्पकालके लिये भी हम भूल नहीं सकते, हमारा भगवान्‌में प्रेम मुख्य हो जानेपर उनके लिये परम व्याकुलता हो जायगी; लेकिन वर्तमानमें हमारा भगवान्‌में प्रेम गौण होकर सांसारिक पदार्थोंमें मुख्य प्रेम हो रहा है और सांसारिक विषयोंकी प्राप्तिके लिये ही हमलोग व्याकुल भी हो रहे हैं। विषयोंको भोगनेका साधन रुपया है, इसलिये शारीरिक ऐश-आराम अधिक-से-अधिक भोगनेके लिये ही हमारी व्याकुलता है, विषयोंमें प्रेम गौण होकर भगवान्‌में प्रेम मुख्य हो जानेपर ऐसी ही व्याकुलता भगवान्‌के लिये हो सकती है। यह मुख्य प्रेम है।

अनन्य प्रेम इससे भी बढ़कर है। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्रीका अपने पतिमें ही अनन्य प्रेम होता है। स्त्रीका परपुरुषमें प्रेम होनेपर वह व्यभिचारिणी कहलाती है। पतिव्रता स्त्रियोंमें भी एक तो पतिव्रता होती है, दूसरी उनमें भी पतिव्रता शिरोमणि होती है, इनके भी उदाहरण नीचे बतलाये जायँगे। भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

(गीता १४। २६)

जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोगके द्वारा मुझको निरन्तर भजता है, वह भी इन तीनों गुणोंको भलीभाँति लाँघकर सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होनेके लिये योग्य बन जाता है।

मेरी अव्यभिचारिणी भक्ति करनेवालेमें व्यभिचार दोष घट ही नहीं सकता। भक्तिमें व्यभिचार दोष घटनेका मतलब पूर्णब्रह्म परमात्माके सिवाय अन्यका चिन्तन करना है। अनन्य प्रेमके भी शास्त्रोंमें अलग-अलग उदाहरण पाये जाते हैं।

अनन्य प्रेमका आदर्श पपीहे एवं मछलीसे समझना चाहिये। पपीहा कितना भी प्यासा क्यों न हो, वह जमीनका पानी नहीं पीता। वह तो बरसातमें भी सिर्फ स्वाती-नक्षत्रमें बरसा हुआ पानी ही ग्रहण करता है। पपीहा मुँह ऊपर किये हुए बादलोंको देखता ही रहता है, चाहे वे बरसें या न बरसें, उसकी लगन तो स्वाती-बूँदके लिये लगी ही रहती है, इसी प्रकार अनन्यभावसे हमें अपने प्रभुमें लौ लगा देनी चाहिये। बादल तो सर्वव्यापी नहीं है, लेकिन हमारे प्रभु तो सर्वत्र व्याप्त हैं तथा जब चाहें दर्शन दे सकते हैं। भगवान् गीतामें कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

हे अर्जुन! जो मेरा अनन्य भक्त सब जगह मुझे ही देखता है तथा सब कुछ मुझमें ही व्याप्त देखता है ऐसे भक्तके लिये न तो मैं अदृश्य हो सकता हूँ और न मेरा भक्त मुझसे अदृश्य हो सकता है। पपीहेसे बलवान् उदाहरण मछलीका समझना चाहिये। पपीहा स्वाती-बूँदके अभावमें बहुत दिनोंतक जी तो सकता है, लेकिन मछलीको जलसे बाहर निकालते ही वह तड़प-तड़पकर मर जाती है। इसी प्रकार जो साधक भगवान्‌के वियोगमें तड़प-तड़पकर मर जाय, साधकके प्रेमकी उस अवस्थाको तीव्रतर प्रेम कहा जाता है। मछलीका प्रेमका उदाहरण तीव्रतरतक ही सीमित है, वह भी प्रेमकी पराकाष्ठा यानी तीव्रतम प्रेमकी समानता नहीं

कर सकता; क्योंकि मछलीको जलसे बाहर निकालनेके बाद भी कुछ समयतक वह जीती तो है ही, तुरन्त नहीं मरती, लेकिन तीव्रतम प्रेमकी हालतमें साधक प्रभुके वियोगमें क्षणभर भी नहीं जी सकता। तीव्रतम प्रेमका उदाहरण—

पंडित जयदेव कवि ईश्वर-भक्त थे। वे एक राजाके दरबारमें रहा करते थे, उनकी स्त्री भी अत्यन्त पतिव्रता शिरोमणि थी। राजाकी कवि जयदेवमें श्रद्धा थी और वे श्रद्धाके योग्य भी थे। कवि जयदेवकी पतिव्रता स्त्री भी रानीके पास महलमें जाया करती थी, एक दिन कवि जयदेवकी स्त्री रानीके पास महलमें उपस्थित थी, उस समय अचानक रानीके भाईकी मृत्युका समाचार राजमहलमें मिला। तब रानीकी भाभी यह समाचार सुनकर सती हो गयी। इससे राजपरिवारके सभी लोगोंने रानीकी भाभीकी खूब प्रशंसा की, लेकिन कवि जयदेवकी स्त्रीने उसकी न तो प्रशंसा ही की और न निन्दा ही। इसपर रानीने जयदेवजीकी स्त्रीसे पूछा कि सब लोग मेरी भाभीकी प्रशंसा करते हैं। आप क्यों चुप हैं? तब वे कुछ बोली नहीं, क्या जवाब दे! फिर रानीने विशेष आग्रहसे पूछा, तब वे बोलीं, पतिव्रता स्त्रीका पति मर ही नहीं सकता, वह विधवा कैसे हो सकती है, जो स्त्री अपने पतिव्रत-धर्मके प्रभावसे अपने पतिके प्राणोंकी रक्षा भी न कर सके, वह कैसी पतिव्रता है? रानीको यह बात सुनकर आश्चर्य हुआ और मनमें यह भाव पैदा हुआ कि इसकी परीक्षा करनी चाहिये। तब रानीने जयदेव कविकी स्त्रीकी परीक्षा लेनेके लिये राजाके पास रहनेवाले एक विशेष सेवकसे कहा कि मैं कवि जयदेवको किसी बहाने राजाके साथ जंगलमें भेजूँगी, तुम एक घंटेके बाद आकर यहाँ सूचना देना कि कवि जयदेव मर गये, इस प्रकारका षड्यन्त्र रचा गया। दूसरे दिन

रानीने राजासे कहा कि सिंहका शिकार किस प्रकार किया जाता है, यह दिखलानेके लिये आप कवि जयदेवको भी साथमें ले जाइये। रानीकी सलाह मानकर दूसरे दिन राजाने कवि जयदेवसे शिकार देखनेके लिये जंगलमें चलनेका विशेष अनुरोध किया और वे कवि जयदेवको साथ लेकर जंगलमें शिकार करने चले गये। पूर्वरचित षड्यन्त्रके अनुसार राजाके विशेष अनुचरने आकर राजमहलमें झूठी खबर दी कि राजा साहब शिकार खेलने गये थे, जंगलसे एक नौहत्था शेर निकला तथा हाथीपर आक्रमण किया। सिंह कवि जयदेवको हाथीके हौदेपरसे उठाकर ले गया और मार डाला, राजा साहब बाल-बाल बच गये। रानी यह सुनकर रोनेका उपक्रम करने लगी, तब कवि जयदेवकी स्त्रीने पूछा, रानीजी क्या बात है? रानीने कहा, क्या बतलाऊँ, मुझसे तो कहा नहीं जाता, फिर सेवकसे पूछा, सेवक भी रोने लगा और कहा कि जुल्म हो गया, महाराज साहब वनमें शिकार करने गये थे, साथमें जयदेव कविको भी ले गये, वहाँ जंगलमें एक नौहत्थे शेरने आक्रमण किया, राजा साहब तो बाल-बाल बच गये लेकिन कवि जयदेवको उसने मार डाला। कवि जयदेवकी मृत्युका समाचार सुननेके साथ ही उस पतिव्रता शिरोमणि स्त्रीने तुरन्त अपना शरीर त्याग दिया। तब रानीको बहुत भय एवं अत्यन्त लज्जा लगी और अब राजमहलमें सच्चा रोना शुरू हो गया। जब राजा आये तब उन्होंने पूछा, क्या हुआ? रानीने रोते हुए उत्तर दिया कि मुझसे बड़ा भारी पाप एवं मूर्खताका काम हो गया। फिर सब बातें रानीने कवि जयदेवके सामने रोकर कहीं। कवि जयदेवने कहा कि मर गयी तो शोक करनेकी क्या बात है। फिर पूछा कि मेरी स्त्रीका शरीर तो है न? पत्नीका शरीर तो मौजूद था ही। कवि जयदेव अपनी मृत स्त्रीके शरीरके

पास गये और उसको पति-पत्नीविषयक शृंगाररसकी रचना गीतगोविन्द सुनायी। गीतगोविन्दकी रचना सुनकर कवि जयदेवकी स्त्री जीवित हो गयी। कवि जयदेवकी स्त्री मरकर पतिलोकको गयी, लेकिन वहाँ पतिलोकमें पतिको न देखकर वापस मृत्युलोकमें पतिके पास उपस्थित हो गयी। पतिव्रता स्त्री पतिके वियोगमें कैसे रह सकती है? वह अपने पतिके दर्शन करके मुग्ध हो गयी। रानीने भी कवि जयदेवकी स्त्रीसे क्षमा माँगी और कहा कि मुझसे बड़ा भारी अपराध हो गया। यह अनन्य प्रेम, तीव्र प्रेमका उदाहरण पतिव्रता स्त्रीका दिया गया।

अब आपको तीव्रतम प्रेमवाले भक्तका उदाहरण दिया जाता है। श्रीभरतजीका उदाहरण तीव्रतम यानी अनन्य प्रेमका समझना चाहिये। भरतजीने तो अनन्य प्रेमको मूर्तिमान् करके दिखला दिया है। तीव्रतम अनन्य प्रेममें साधककी अपने आराध्य वस्तुके क्षणमात्रके वियोगसे ही मृत्यु हो जाती है।

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवनसुत आइ गयउ जनु पोत॥

श्रीभरतजी प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके वियोगरूपी समुद्रमें आकुल हो रहे हैं। प्राण जानेकी तैयारी हो रही है, उस समय श्रीहनुमान्जी ब्राह्मणका रूप धारण करके डूबते हुएके लिये आधारस्वरूप नौकाकी तरह आकर प्रकट हुए और बतलाया कि जिसको आप दिन-रात निरन्तर स्मरण करते हैं वे श्रीराम आ रहे हैं, सुनते ही भरतजी आनन्दमग्न हो जाते हैं। श्रीभरतजी चौदह वर्षतक तो श्रीरामकी आज्ञाका पालन करनेके लिये ही जीते रहे, अगर चौदह वर्षकी अवधि बीत जानेपर एक दिन भी जीवित रहते तो उनके अनन्य प्रेममें दोष घट सकता था, चौदह वर्षकी अवधि समाप्त होनेके एक दिन पूर्वकी भरतजीकी उक्त अवस्था है।

बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

चौदह वर्षकी अवधि बीत जानेके बाद भी भगवान्‌के वियोगमें यदि मैं जीवित रहता हूँ तो मेरे समान पापी और कौन होगा? यदि उन प्रभुके अभावमें मेरे प्राण रह जायँ और मुझे जलकर शरीरका त्याग करना पड़े तो मेरे समान पापी कौन होगा? तीव्रतम प्रेम यानी अनन्यप्रेममें साधक प्रभुका क्षणमात्रका वियोग भी सहन नहीं कर सकता।

तीव्रतम अनन्यप्रेमका एक और उदाहरण—

श्रीमद्भागवतमें कथा आती है—एक समय श्रीकृष्ण और बलदेव ग्वालबालोंसहित गायें चरानेके लिये जंगलमें गये। वहाँपर सब ग्वालबालोंको जब भूख लगी, तब भगवान् श्रीकृष्णने ग्वालबालोंसे कहा—यहाँ ऋषिलोग यज्ञ कर रहे हैं, उनलोगोंके पास जाकर भोजन माँग लाओ। जब ग्वालबाल ऋषियोंके पास गये और भगवान् श्रीकृष्णका सन्देश सुनाया, तब उन्होंने कहा—कौन कृष्ण-बलदेव, हमलोग नहीं जानते, हटो यहाँसे। तब सब ग्वालबाल भगवान्‌के पास आये और कहा, उनलोगोंने इस प्रकार हमारा अपमान किया। तब भगवान् श्रीकृष्णने कहा कि तुम किनके यहाँ चले गये। जाओ, ऋषिपत्नियोंके घर जाओ और उनसे जाकर कहो—कृष्ण-बलदेव भूखे हैं, अतः उनके लिये खान-पानका इन्तजाम करो। ग्वालबाल ऋषिपत्नियोंके पास गये और भगवान्‌का सन्देश कह सुनाया। सुनते ही सब ऋषिपत्नियाँ प्रेमविह्वल हो गयीं एवं अनेक प्रकारकी विविध खाद्य सामग्रियाँ जुटाकर भगवान्‌के निमित्त भिजवायीं। इसी प्रकार एक ऋषिपत्नीको उसके पतिने भगवान् श्रीकृष्णके पास जानेसे मना किया, लेकिन जब ऋषिपत्नीने विशेष आग्रह किया एवं किसी भी प्रकार रुकनेको तैयार नहीं हुई, तब क्रोधित होकर ऋषिने उसको

कमरेमें बंद कर दिया। ऋषिपत्नीका प्रभुमें अनन्य प्रेम था। अनन्य प्रेमी भगवान्‌के वियोगको सहन कैसे कर सकता है? ऋषिपत्नीका नश्वर शरीर बंद कमरेमें पड़ा रहा, लेकिन ऋषिपत्नी अपने प्रभुके पास अन्य ऋषिपत्नियोंसे भी पहले पहुँच गयी। जब पतिने कमरा खोला तब पत्नीका मृत शरीर पाया और उन्हें बहुत दुःख हुआ। इसे अनन्य प्रेम कहते हैं। प्राण भले ही चले जायँ, लेकिन प्रेमीका वियोग क्षणभर भी सहन नहीं हो सकता। इसी प्रकार रासपंचाध्यायीमें गोपियोंके अनन्य प्रेमकी दशाका वर्णन आता है। शरत्पूर्णिमाकी चाँदनी रातमें भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ रास खेल रहे हैं, रास खेलते-खेलते भगवान् अन्तर्धान हो जाते हैं। भगवान्‌के अभावमें सब गोपियाँ करुण स्वरसे विलाप करने लगीं। जब भगवान् प्रकट नहीं हुए, तब गोपियोंके प्राण जानेकी तैयारी हो गयी, इतनेमें भगवान् प्रकट हो जाते हैं। फिर विलम्बका काम नहीं है। भगवान्‌के अनन्य प्रेममें भी अनन्यतर और अनन्यतम—ये दो भेद और हैं। भगवान्‌के मिलनेकी इच्छा एवं अनन्य इच्छा इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी कि अनन्य तीव्र इच्छा, क्योंकि अनन्य इच्छा एवं इच्छाकी अपेक्षा भगवान्‌में अनन्य तीव्र इच्छा पैदा होनेपर भगवान्‌की प्राप्ति जल्दी होती है और भगवान्‌में अनन्यतर तीव्र एवं अनन्य तीव्र प्रेम हो जानेपर तो एक क्षण भी देरी नहीं है, भगवान् सामने ही खड़े हैं। भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा तीव्रतर हो, भले ही सकाम हो या निष्काम, दोनों ही स्थितिमें भगवान्‌के दर्शन तो हो ही जाते हैं, लेकिन सकामभावकी अपेक्षा निष्कामभाव दामी है। निष्कामभाव सबसे उच्चकोटिका साधन है।

भक्त ध्रुवकी इच्छा तीव्र इच्छा है। श्रीध्रुवजी '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**' मन्त्रका जाप कर रहे हैं और भगवान्‌के

स्वरूपका ध्यान करते हैं, ध्यान भी ऐसा कि जब भगवान् ही ध्रुवके ध्यानवाले अपने स्वरूपको बाहर खींच लेते हैं, तभी छूटता है एवं भगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। ध्रुवसे भी बढ़कर प्रभुसे मिलनेकी तीव्रतर इच्छा द्रौपदीमें है, यद्यपि उसमें भी सकामभाव प्रधान है। द्रौपदीके परिवारमें सबके भोजन कर चुकनेके बाद राजा दुर्योधनकी प्रेरणासे महर्षि दुर्वासा वहाँ पहुँचते हैं। भगवान् सूर्यने द्रौपदीको एक अन्नका अक्षय पात्र दिया था, जिससे द्रौपदीके भोजन करनेके पूर्व चाहे जितना भोजन प्राप्त किया जा सकता था। द्रौपदीके भोजन कर लेनेके बाद उससे भोजन नहीं मिलता था। जब दुर्वासा वनमें पाण्डवोंके पास हजारों शिष्योंको लेकर पहुँचे, उससे पहले सबको खिला-पिलाकर द्रौपदीने भोजन कर लिया था। अतएव उपस्थित आगन्तुकोंके भोजनकी व्यवस्था करनेके लिये द्रौपदीके पास कोई साधन नहीं था। उस अन्नके अक्षय पात्रमें भोजन एक बार ही पकानेकी मर्यादा थी, बड़ा संकटकाल उपस्थित हो गया। दुर्वासा भोजनकी व्यवस्थाके लिये कहकर अपने शिष्योंको लेकर सन्ध्या-वन्दन करने चले गये। अब सन्ध्या करके दुर्वासा आते ही होंगे? क्या करे द्रौपदी? अगर उनके भोजनकी उचित व्यवस्था न कर सके तो क्रोधी दुर्वासा सबको जलाकर भस्म कर देंगे। द्रौपदीने समझा, आज सर्वनाश होगा। किसी प्रकारका बचावका अन्य साधन न देखकर द्रौपदीने आर्तभावसे लीलाधारी भगवान् श्रीकृष्णको पुकारना शुरू किया। हे नाथ, हे नारायण, हे गोविन्द, हे दामोदर, हे वासुदेव, हे श्रीकृष्ण आपने कौरवोंकी भरी सभामें मेरी लाज बचायी थी, उस समय तो सतीत्वकी रक्षाका ही सवाल उपस्थित था। लेकिन इस समय तो सबके ही विनाशकी तैयारी है। हे भगवन्! आइये, दर्शन दीजिये, सबकी रक्षा कीजिये। भगवान्को

भक्त अनन्यतम प्रेमसे विह्वल होकर पुकारे, तब भगवान्‌के प्रकट होनेमें विलम्बका क्या काम? वे तो सामने ही खड़े हैं। द्रौपदी कहती है, प्रभो! आप आ गये। भगवान्‌ने कहा, तुमने मुझे बुलाया, तब मैं किस प्रकार रुक सकता था। भगवान्‌ने कहा, द्रौपदी भूख लगी है। द्रौपदीने कहा, भगवन् भोजन कहाँ है? भगवान् कहते हैं, द्रौपदी क्या हँसी करती हो? अन्तर्यामी प्रभु अपने भक्तोंसे संकटकालमें भी विनोद करते हैं। अच्छा द्रौपदी देखो, पात्रमें मेरे लिये कुछ तो होगा, बचा-खुचा सही। महाराज उसमें कुछ भी नहीं है, मैंने तो उसको माँजकर रख दिया है। अच्छा, उस पात्रको लाओ तो सही, भगवान्‌के आग्रह करनेपर द्रौपदी उस पात्रको लेकर आती है, पात्रके गलेपर शाकका एक पत्ता लगा है, विश्वम्भर प्रभुने उस पत्तेको लेकर जलपान किया। विश्वम्भरकी तृप्ति हो जाय तो विश्वके प्राणियोंको तो अजीर्ण हो जाना चाहिये। द्रौपदीने प्रभुको सब परिस्थिति बतलायी। दुर्वासा ऋषि अपने दस हजार शिष्योंसहित भिक्षाके निमित्त पधारे हैं। अभी संध्या-वन्दन करके आते ही होंगे। भगवान्‌ने कहा, कोई हर्ज नहीं है। सहदेव जाओ, सबको सादर बुला लाओ। घरमें अन्नके एक दानेकी व्यवस्था नहीं और हजारों अभ्यागतोंको निमन्त्रण! सब लीलामय भगवान्‌की करनीको देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। उधर सहदेव दुर्वासाको भोजनके लिये बुलाने जाते हैं, लेकिन दस हजार शिष्योंसहित दुर्वासा बिना भोजन किये ही तृप्त हो जाते हैं। डकारें आने लगती हैं, दुर्वासाने समझ लिया कि अब यहाँपर दाल गलनेकी नहीं है, युधिष्ठिर भगवान्‌के अनन्य भक्त हैं। जिस प्रकार भक्त अम्बरीषके साथ अनुचित व्यवहार करनेपर मेरी दुर्दशा हुई थी, वैसी ही दुर्दशा यहाँ भी हो सकती है। दुर्वासा अपने सब शिष्योंके सहित वापस अपने

आश्रमको लौट जाते हैं। जब सहदेव दुर्वासाको बुलानेके लिये घाटपर देखने गये, तब वहाँ वे नहीं मिले, पूछनेपर भी उनका पता नहीं चला। सहदेवने आकर भगवान्‌से कहा—भगवन्! वे तो न मालूम कहाँ चले गये। द्रौपदीकी भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा तीव्रतर है। द्रौपदीको भगवान्‌को आनेके लिये हे भगवन्, नारायण, वासुदेव, श्रीकृष्ण इस प्रकार देरतक प्रार्थना तो करनी पड़ी, लेकिन तीव्रतम इच्छामें इतनी देरीकी आवश्यकता नहीं है। गजेन्द्रकी भगवान्‌से मिलनेकी तीव्रतम इच्छा है; प्राण जानेकी एकदम तैयारी है, एक नामोच्चारणके साथ ही भगवान् गरुडको छोड़कर प्रकट हो जाते हैं। गजेन्द्रका भगवान्‌में अत्यधिक विश्वास है और उस समय कोई उपाय भी तो नहीं है। यह भगवान्‌से मिलनेकी तीव्रतम इच्छाका उदाहरण है। ध्रुवकी इच्छा तीव्र इच्छा है, क्योंकि वे भगवान्‌के अभावमें साढ़े पाँच मासतक उनका वियोग सहन कर सके थे, द्रौपदीका उदाहरण तीव्रतर हुआ; क्योंकि एक प्रहरतक वह भी भगवान्‌का वियोग सहन कर सकती थी। गजेन्द्रका उदाहरण तीव्रतम हुआ, क्योंकि वहाँ तो पलभर भी प्रभुका वियोग सहन नहीं किया जा सकता था। उपरोक्त सभी उदाहरणोंमें भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा तो है ही, लेकिन सब सकामभावसे है, अगर भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा निष्कामभावसे तीव्रतम हो जाय तो बात ही क्या है? ऐसा साधन सबसे उच्चकोटिका साधन है।

श्रीसुतीक्ष्णजीने सुना कि भगवान् श्रीराम आये हैं। बस, सुनते ही वे प्रेमविह्वल हो जाते हैं, रोमांच हो जाता है, दिशा एवं रास्तेका भी ज्ञान नहीं है कि मैं कहाँ जा रहा हूँ, बस, भगवान्‌के ध्यानमें मस्त हैं, भगवान् आ जाते हैं और वृक्षकी ओटसे अपने भक्तका ध्यान देखते हैं। भगवान्‌ने आकर सुतीक्ष्णको ध्यानसे

जगाना चाहा, लेकिन वे ध्यानमें मस्त हैं। फिर भगवान्‌ने अपने ध्यानके स्वरूपका आकर्षण कर लिया, इससे सुतीक्ष्णजीका ध्यान टूट गया। ध्यान टूटनेपर सुतीक्ष्णजी इस प्रकार विकल हो उठते हैं जिस प्रकार मणिके खो जानेपर सर्प व्याकुल हो उठता है। लेकिन सामने देखा तो भगवान् खड़े हैं। सुतीक्ष्णजीमें भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा तीव्रतर है, लेकिन ध्यान उसका आधार है। भगवान्‌के मिलनेपर उनकी कैसी दशा हो जाती है। भगवान्‌के न मिलनेपर प्राण जानेका उदाहरण गोपियोंका, भरतजीका एवं ऋषिपत्नीका है। भगवान्‌से मिलनेकी तीव्र इच्छा हो जानेपर भगवान्‌को बाध्य होकर दर्शन देना पड़ता है, अतः भगवान्‌से मिलनेकी तीव्र इच्छा पैदा होनी चाहिये। फिर और साधनोंकी आवश्यकता नहीं है। प्रेम और भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा दोनों एक ही हैं। प्रेम कारण है और इच्छा कार्य—'**सङ्गात् सञ्जायते कामः।**' इच्छा और प्रेम भिन्न-भिन्न नहीं हैं। प्रेमके सकाम और निष्काम दो स्वरूप हैं। भगवान्‌में कामनासहित सकामप्रेम भी उत्तम है, लेकिन निष्कामप्रेम और भी मूल्यवान् है। इस प्रकारका निष्कामप्रेम करनेवाला प्रभुका प्रेमी वास्तवमें बहुत उच्चकोटिका साधक है। सकामभावको लेकर साधना करनेवाले तो स्वार्थी ही हैं।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

महापुरुषकी महिमा

जिस प्रकार एक ही दीपककी सहायतासे लाखों दीपक प्रकाशमान किये जा सकते हैं तथा एक ही आगकी चिनगारी सारे ब्रह्माण्डको जला सकती है; केवल हवा व ईंधनकी आवश्यकता है उसी प्रकार एक ही महापुरुष सारे संसारका कल्याण कर सकते हैं, लेकिन आवश्यकता है, प्रेम और श्रद्धारूपी हवा एवं ईंधनकी। इसी प्रकार गंगास्नानसे भी मनुष्यका उद्धार बहुत शीघ्र हो सकता है, लेकिन उसमें आवश्यकता है श्रद्धा एवं विश्वासकी। हम यदि महापुरुषों, गंगास्नानादि शास्त्रविहित अन्य कर्मोंमें श्रद्धा न करें तो क्या उपाय है? महापुरुषों, गंगास्नानादिमें मनुष्यका उद्धार करनेकी जो शक्ति है वह तो है ही, कोई उनकी शक्तिकी मदद न लेना चाहे तो न ले। सबसे प्रधान चीज श्रद्धा है। महापुरुषोंमें यह विश्वास हो जानेपर कि वे महात्मा हैं, बस, बेड़ा पार है। इस प्रकारका विश्वास हो जानेपर साधक महापुरुषके संकेत, उद्देश्य एवं कथनानुसार हँसता हुआ सब क्रियाएँ करता है। उनमें फिर अपनी बुद्धि या तर्क नहीं लगाता। जिस प्रकार एक ही टकसालमें चाँदीसे लाखों रुपये तैयार होते हैं, वैसे ही साधक अपनेको चाँदीकी तरह निर्बुद्धि समझे, बस, महात्मा पुरुष जिस प्रकार साधकको आदेश दें, उनके कथनानुसार सब क्रिया करता चले। जिस प्रकार टकसाल चाँदीसे रुपया बना लेती है, चाँदी उसमें अपनी तरफसे कोई एतराज नहीं करती, वैसे ही अपने तो उनके आज्ञापालनको ही प्रधान समझें, वे जैसा भी इशारा कर दें, ठीक है, बस, महापुरुष बनते देर नहीं लगती। एक ही टकसाल जिस प्रकार लाखों रुपये तैयार कर सकती है,

---

प्रवचन, दिनांक—१५-३-१९५०, रात्रि ८.३० बजे, स्वर्गाश्रम।

वैसे ही एक ही महात्मा लाखों महापुरुष तैयार कर सकते हैं, बस, विश्वास एवं श्रद्धाकी प्रधान आवश्यकता है। फिर तो लाखों साधकोंका उद्धार होना मामूली-सी बात है। साधकको महापुरुषकी हर एक क्रिया, सत्संग, उपदेशादि तथा सभी कार्योंमें खूब आनन्दका अनुभव करना चाहिये। बस, उनकी सब क्रिया देख, सुनकर फूला नहीं समावे। जिस प्रकार गोपियाँ भगवान् श्रीकृष्णकी हर एक क्रिया, ग्वालबालोंकी तरह गायें चराना, माखन चुराना तथा अन्य सभी साहसिक तथा लौकिक कृत्योंको देखकर, सुनकर प्रसन्न होती थीं, वैसे ही साधकको महापुरुषकी सभी क्रियाओंको देख, सुनकर प्रसन्न होना चाहिये और उनमें अत्यन्त श्रद्धा एवं विश्वास रखना चाहिये। गोपियोंकी भगवान्‌की हर एक लीलामें श्रद्धा है। अतः भगवान्‌की सभी चेष्टाएँ गोपियोंके लिये कल्याण देनेवाली एवं अत्यन्त हितकर हैं, वैसे ही अश्रद्धालु पुरुषकी दृष्टिमें साक्षात् पूर्णब्रह्मकी सब क्रियाएँ श्रद्धाके अभावमें कल्याणको देनेवाली एवं इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं हो सकती। गोपियोंकी भगवान्‌में पूर्ण श्रद्धा है कि वे साक्षात् भगवान् हैं। भगवान्‌को साक्षात् भगवान् समझ लेनेपर साधककी मुक्ति है। विश्वास एवं श्रद्धाकी जितनी कमी है, अपना कल्याण होनेमें उतना ही विलम्ब समझना चाहिये। मनुष्य जिस किसीके साथ जिस प्रकारका भाव रखकर व्यवहार करता है, उसीके अनुसार उसे सिद्धि प्राप्त होती है। जिस प्रकार माँ, बहिन, स्त्री, पुत्रादिमें अपनी जैसी-जैसी भावना होती है। उसीके अनुसार अपनेको फल व सिद्धि मिलती है। वैसे ही महापुरुषको साक्षात् महात्मा समझ लेनेपर उनसे सहज सुलभ कल्याणकी प्राप्ति होनेमें तनिक भी विलम्ब नहीं हो सकता। संसारमें ईश्वरके एवं महापुरुषके समान और कोई भी नहीं है।

स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥

संसारमें सभी मित्र अपनी स्वार्थ प्रधान भावनाको लेकर मित्रताका आडम्बर रखनेवाले हैं, लेकिन परमार्थ-सिद्धिके लिये प्रेरणा करनेवाले महापुरुषोंका संसर्ग कहाँ?

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

हे प्रभो! आप और आपके सेवक महापुरुषोंके सिवाय संसारमें अन्य हेतुरहित प्रेम करनेवाला (सुहृद्) एवं संसारका उपकार करनेवाला कोई नहीं है।

सुर नर मुनि सब कै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

देवता, मनुष्य, मुनि सभी स्वार्थकी भावनाको लेकर ही प्रेम करते हैं। इनमें जो स्वार्थरहित प्रेम करे, वही महापुरुष है। महापुरुषोंकी महिमा जितनी कही जाय, थोड़ी ही है। वास्तवमें महापुरुषोंकी महिमाका कोई वर्णन ही नहीं कर सकता, संसारमें किसी चीजका अभाव नहीं है। संसारमें महापुरुष नहीं हों, ऐसी बात नहीं है। महापुरुष विरले हैं। बिलकुल अभाव नहीं हो सकता। भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(गीता ७। ३)

हे अर्जुन! हजारों-लाखों मनुष्योंमेंसे कोई एक साधक मेरी प्राप्तिके लिये साधन करता है, उनमें (साधन करनेवालों) भी कोई विरला ही मुझको तत्त्वसे जानता है। वर्तमानमें जो लोग अपनेको अवतार, महापुरुष, सिद्धादि कहते हैं, उनमेंसे तो शायद ही कोई महापुरुष हो। संसारमें अधिकांश आदमी मान-बड़ाई प्रतिष्ठाकी कामना करनेवाले हैं और जबतक मान-बड़ाईकी चाह है तबतक वह भिखारी है।

चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये, सो जग साहनसाह॥

मान, बड़ाई, प्रतिष्ठाको सूकरकी विष्ठाके समान समझना चाहिये जो अपनी बड़ाई करे, उसका हृदयसे विरोध करना चाहिये। बाहरसे विरोध न भी करे तो खतरा नहीं, लेकिन भीतरसे उसका विरोध करना कल्याणके लिये अनिवार्य है। मनुष्य यह समझते हुए भी कि मान-बड़ाई खतरेकी चीज है, मौका पड़नेपर उसे मोहवश स्वीकार कर ही लेता है, यह मान-बड़ाई ऐसी मीठी है। इसीसे साधनमें विघ्न पड़ जाता है। किसीने कहा है—

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह।
मान बड़ाई ईरषा, दुरलभ तजनी येह॥

मनुष्य कंचन एवं स्त्री-सुखका सहज ही त्याग कर सकता है, लेकिन मान, बड़ाई एवं ईर्ष्याका त्याग करना बहुत ही कठिन है। मान-बड़ाई प्राप्तिकालमें तो अमृतके समान लगती है, लेकिन इसका परिणाम विषके समान होता है। महात्मा पुरुषोंमें उपरोक्त दुर्गुणोंका अत्यन्त अभाव होता है। आजकल जो भी महात्मा बने हैं, अपनेको महात्मा प्रसिद्ध करवाते हैं, उनके तो बाबाजीकी झोलीमें जेवड़ा (रस्सा) ही है। गुणोंके सागर, जिनमें कोई अवगुण नहीं, ऐसे महापुरुष बहुत दुर्लभ हैं। जिनके दर्शन, शब्द, स्पर्श, भाषणसे ही मनुष्यका कल्याण हो जाता है, वही असली महात्मा है। महापुरुषके साथ वार्तालापसे पैदा होनेवाली प्रसन्नताका तो ठिकाना ही क्या है? जिस प्रकार साक्षात् भगवान्‌के मिलनेपर कितना अधिक आनन्द, सुख-शान्तिकी उपलब्धि होती है, वैसा ही आनन्द, सुख, शान्ति महापुरुषको महापुरुष समझ लेनेपर मिलती है, आनन्दकी सीमा नहीं रहती।

महापुरुषके संसर्गसे जड़ वस्तु भी पवित्र हो जाती है, फिर चेतनका तो कहना ही क्या है? कोई भाई कहे कि महापुरुषके संसर्गसे जड़ वस्तु पवित्र हो जाती है इसका प्रमाण तो जरा कठिनतासे भी प्राप्त हो सकता है, लेकिन चेतनकी पवित्रताका तो प्रमाण मिलना चाहिये। किस प्रकार विश्वास हो? इसी प्रकार गंगास्नान करनेकी भी इतनी महिमा बतलायी जाती है लेकिन प्रत्यक्षमें देखनेमें तो आती नहीं? कहते हैं, बस, विश्वास कर लेना चाहिये, प्रमाणित करनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। उनका प्रत्यक्ष फल चाहे देखनेको मिले या नहीं। राजा रन्तिदेव चांडालको जल पिला रहे हैं, उस समय क्या स्वयं राजा रन्तिदेव जानते थे कि एक क्षणके बाद ही मुझे भगवान्‌के दर्शन होने ही वाले हैं? इस चीजको तो भगवान् ही समझ सकते हैं। खुद राजा रन्तिदेव भी इस चीजको नहीं समझ सके। इसलिये अपनेको तो इन सब बातोंको सोचनेमें बुद्धि ही क्यों लगानी चाहिये। अपनेको तो साधन-पथपर बढ़ते जाना चाहिये। बस, बीच-बीचमें अपना रास्ता ठीक है या नहीं, इतना ही समझनेकी आवश्यकता है। कोई पूछे, महापुरुषको किस प्रकार पहचाना जाय? महापुरुषमें श्रद्धा हो जानेपर स्वाभाविक ही उनकी सारी क्रियाएँ साक्षात् भगवान्‌के समान लगती हैं। उनकी सब क्रियाएँ अद्‌भुत एवं नवीन लगती हैं। जिनको देख-देखकर साधक फूला नहीं समाता। महापुरुषोंके आचरणोंको कसौटीपर कसनेकी कोई भी कसौटी नहीं है। महर्षि वसिष्ठ श्रीरामचन्द्रजीसे कहते हैं—

देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदयँ अपारा॥

मुनि वसिष्ठको भी भगवान्‌के आचरणोंको देखकर मोह पैदा हो जाता है, फिर साधारण साधककी तो बात ही क्या है? लेकिन सभी मुनियोंको इस प्रकार मोह हो जाय, ऐसी बात नहीं है।

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

महापुरुषोंमें साधकका जिस प्रकारका भाव रहता है, उसे महापुरुष वैसे ही दीखते हैं। राजा साहबने पूछा था कि हम लोगोंका साधन कहाँतक पहुँच गया? इसकी कसौटी क्या है? हमारा साधन कहाँतक पहुँचा, इसकी कसौटीकी कोई आवश्यकता ही नहीं है, लक्ष्यको कसौटीमें कसनेपर ही गड़बड़ी है। इससे साधनमें सन्देह पैदा होनेका भी खतरा है। बस, इसीलिये भगवान्‌के भरोसेपर निर्भय होकर अपने लक्ष्यकी ओर आगे बढ़ते रहना चाहिये। बस, कभी-कभी अपना मार्ग ठीक है या नहीं, इतनी ही जाँच कर सकते हैं। जिस प्रकार एक क्षुधार्त आदमी अगर भूखकी निवृत्ति चाहे तो उसको भोजन कर लेना चाहिये। बस भूख थी, निवृत्ति अपने-आप हो जायगी, इसलिये भगवान्‌से मिलनेके लिये साधनको बढ़ना चाहिये। फिर भगवत्प्राप्ति अपने-आप हो जायगी। साधन विश्वास एवं श्रद्धासे बढ़ता है। शास्त्रों, महात्माओं एवं भगवान्‌में विश्वास, श्रद्धा करनी चाहिये। फिर कल्याण होनेमें विलम्बका काम नहीं है। सब क्रिया निःस्वार्थ, निष्कामभावसे करनी चाहिये। मुक्तिकी भी कामना नहीं करनी चाहिये। मुक्तिकी कामना साधकको अटकाने एवं पतन करनेवाली है। यह बात उच्चकोटिके साधकोंके लिये कही जाती है। साधारण सकाम श्रेणीके साधकोंके लिये ऐसी बात नहीं है। भगवान्‌ने गीतामें भक्तोंकी चार श्रेणियाँ बतलायी हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

(गीता ७। १६)

हे अर्जुन! आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—चार प्रकारके उत्तम कर्म करनेवाले भक्तजन मुझे भजते हैं। अर्थार्थीसे आर्त भक्त,

आर्तसे जिज्ञासु एवं जिज्ञासुसे सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी निष्कामभावसे भजनेवाला साधक श्रेष्ठ है; क्योंकि ज्ञानी निष्कामीके सिवाय तीनों श्रेणी अज्ञानियोंकी है। '**उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।**' मुक्तिकी कामना भी साधकको अटकानेवाली है। जिस प्रकार स्वामीजी हैं। हमने विश्वास कर लिया कि ये महात्मा हैं, इनके संगसे अपनी मुक्ति अवश्य हो जायगी। किसी समय स्वामीजीका आचरण देखकर हमें यह जँच गयी कि ये तो वास्तवमें महात्मा नहीं हैं। बस, अपना साधन अटक गया, क्योंकि अब स्वामीजीमें अविश्वास हो गया, अतः उनके संगसे शिक्षाकी बात मिलनी कठिन है, बस, यही विघ्न हो गया। अगर हमारेमें श्रद्धाकी कमी नहीं होती तो अपना संग व प्रेम स्वामीजीमें कायम रहता और साधन बढ़ता, श्रद्धाकी कमी आते ही प्रेममें कमी आती है, प्रेमकी कमी आते ही साधन समाप्त हो जाता है। इस प्रकार मुक्तिकी कामना करना भी साधनमें विघ्नस्वरूप हो सकता है। पूछा जा सकता है कि फिर साधकका क्या लक्ष्य होना चाहिये? उत्तर दिया जाता है कि ज्ञानी महात्मा पुरुष भी तो कोई लक्ष्य रखते ही होंगे। उनका उद्देश्य ऊँचे दरजेका होना चाहिये। वे तो लोकसंग्रहके लिये सब काम करते हैं। हमें भी कर्तव्य-कर्मोंको भगवान्‌की आज्ञा समझकर लोकसंग्रहके लिये ही करनेका उद्देश्य बना लेना चाहिये। फलप्राप्तिकी इच्छाका त्याग कर देना चाहिये। महात्माओंका सिद्धान्त काममें लाना चाहिये। निष्कामभाव बहुत उच्चकोटिका साधन है। आसक्तिके अभावसे कामनाका स्वतः ही नाश हो जाता है। आसक्ति नहीं तो कामना भी नहीं '**सङ्गात् सञ्जायते कामः।**' निष्कामभाव एवं श्रद्धा एक-से-एक बढ़कर है। उच्चकोटिके महापुरुष जिस-जिस प्रकारके आचरण करें, बस उसीके अनुसार आचरण करना चाहिये। गीतामें भगवान्‌ने कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

(गीता ३। २१)

श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष जिस प्रकारका आचरण करता है, अन्य सांसारिक लोगोंको उनके अनुकूल ही आचरण करना चाहिये। वह जो भी कुछ निश्चित कर दे, संसारको उसीके अनुसार आचरण करने चाहिये। सांसारिक पदार्थ क्षणभंगुर एवं अनित्य हैं, उनसे मनको उठा लेना चाहिये। संसारकी असारताको समझकर उसका त्याग करना चाहिये। बस, साधनमें जुट जाना चाहिये।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

□□

आत्मकल्याणकी आवश्यकता

असली बात यही है कि हम संसारमें जिस उद्देश्यको लेकर आये हैं उसको सफल बना लेना चाहिये। भजन, ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय, संयम, तपस्या एवं धर्मपालन करके अपनी आत्माका कल्याण कर लेना चाहिये। मनुष्य अपनी आत्माका कल्याण सिर्फ मनुष्य-शरीरमें ही कर सकता है। दूसरी किसी भी योनिमें मनुष्य अपनी आत्माका कल्याण नहीं कर सकता है। हमलोगोंके सामने यह बहुत जटिल प्रश्न उपस्थित है। अगर अपना अचानक ही शरीर छूट जाय तो आत्मोद्धारका काम अटक जायगा। शरीरका क्या भरोसा है? इसलिये जबतक मृत्यु दूर है, उससे पहले ही साधकको आत्मोद्धारका काम बना लेना चाहिये। सांसारिक अन्य काम बाकी भी पड़े रहेंगे तो अपने उत्तराधिकारी उनको सम्पन्न कर सकते हैं। लेकिन यह आत्मोद्धारका काम ऐसा है जिसे आपका कोई भी उत्तराधिकारी नहीं कर सकता, इस कामको आपको स्वयं ही करना होगा और यह काम मनुष्य-शरीरके सिवाय अन्य किसी भी योनिमें होना असम्भव है। इसीलिये मनुष्य-जन्म अनमोल है। हीरे, रत्नोंसे भी अनमोल है, हीरे, रत्नोंकी कीमत तो होती है, इसकी कीमत नहीं लगायी जा सकती। किसीने कहा है कि हीरेके समान यह मनुष्य-शरीर कौड़ीके बदलेमें चला जाता है। यह बात तो ठीक है लेकिन इस शरीरकी हीरेके साथ उपमा संगत नहीं है, क्योंकि हीरेका मोल लग जाता है, मनुष्य-शरीरका कोई भी मूल्य नहीं लगा सकता, क्योंकि इस शरीरसे प्रयत्न करनेपर बहुत थोड़े समयमें ही भगवान्‌के दर्शन हो सकते हैं। साधन करनेपर इस शरीरसे बहुत

प्रवचन, दिनांक—१६-३-१९५०, प्रातःकाल १० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

जल्दी भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। इसमें देरीका काम नहीं है। यह मनुष्य-जन्म ऐसा कीमती है। यदि कोई कहे कि जो अतिशय पापीसे भी पापी हो और समय काफी बीत चला, क्या उसका भी कल्याण हो सकता है? इसका उत्तर भगवान् देते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३०-३१)

'अतिशय पापी भी अगर अनन्यभावसे मेरा भजन करता है तो उसका भी उद्धार हो जाता है, वह बहुत ही जल्दी धर्मात्मा, साधु पुरुष बन जाता है एवं शाश्वत शान्तिको प्राप्त हो जाता है। हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! तू निश्चितरूपसे जान ले, मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता।' जब पापी-से-पापीका भी भगवान् उद्धार करनेका उपाय बतलाते हैं, तब जो कम पापी है, उनका उद्धार तो जल्दी हो सकता है।

कोई पूछे कि मूर्ख आदमी जो किसी भी प्रकारका साधन, ज्ञान, ध्यान, तप, भक्तियोग या किसी प्रकारका अन्य साधन नहीं जानता, क्या ऐसे मूर्खका भी कल्याण हो सकता है? भगवान् कहते हैं, कैसा भी मूर्ख क्यों न हो उसके भी उद्धारका उपाय है।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३। २५)

जो मानव किसी भी प्रकारके साधनको भी नहीं जानते, वे लोग अन्य साधनके जानकार सन्त-महात्माओंके सम्पर्कसे भजन-ध्यान एवं अन्य साधनोंको देख, सुनकर उसके अनुरूप

आचरण करके अपना कल्याण कर सकते हैं। इसलिये जो किसी प्रकारके साधनोंसे भिज्ञ नहीं है, उनको भी उत्साह रखना चाहिये। निराश होनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। जब भगवान् हमें इस प्रकार आश्वासन देते हैं फिर भय एवं निराशाका कोई भी कारण नहीं होना चाहिये। ऐसा मौका बारम्बार मिलना बहुत कठिन है। उत्तम देश, उत्तम काल, उत्तम योनि, उत्तम कुल, उत्तम जाति, सभी बातें उत्तम एवं उत्तम भगवत्-चर्चा—ऐसा मौका मिलनेपर भी अगर हमारी आत्माका कल्याण नहीं होता है तब कब होगा! हमारा ब्रह्माण्डमेंसे सबसे पवित्र भारतवर्षमें और उसमें भी आर्यावर्तमें जन्म हुआ है, आर्यावर्तमें भी सप्तपुरी, मायापुरीमें हम उपस्थित हैं, फिर गंगाजीका किनारा भी है—ये सभी चीजें अत्यन्त कल्याण करनेवाली हैं। अतः कल्याण जल्दी-से-जल्दी बन सके इसका पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। उत्तम देशके सिवाय हमें भजन करनेके लिये सबसे उत्तम काल कलियुग भी प्राप्त है, जिसमें सिर्फ भगवान्‌के गुणानुवादसे ही कल्याण हो जाता है, सतयुग, द्वापर, त्रेतामें लोगोंको बड़ी कठिन तपस्या करनी पड़ती थी, तब कल्याण होता था। कलियुगकी महिमा श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

यद्यपि कलियुगमें अन्य अनेक अवगुण हैं, फिर भी साधकके लिये कलियुगमें सबसे बड़ी यही विशेषता है कि सिर्फ भगवान्‌के गुणानुवादसे, बहुत थोड़े साधनमात्रसे ही आत्मोद्धार हो सकता है। हमें सत्संग करनेका मौका भी कलियुगमें मिला है। इतनी सहूलियत मिलनेपर भी जिनका कल्याण न हो, ऐसे मनुष्योंके लिये श्रीतुलसीदासजी महाराज कहते हैं—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

जो मनुष्य इस प्रकारका जन्म एवं सत्संगका मौका पाकर भी आत्मोद्धारका उपाय नहीं करता, ऐसा मूढ़मति मनुष्य निंदाका पात्र है एवं उसे आत्महत्यारेको प्राप्त होनेवाली गति मिलती है। भगवान्‌ने बड़ी भारी दया करके हमें इस प्रकारका सुन्दर मौका दिया है। साधनमें अनेक प्रकारकी बाधाएँ आ सकती हैं, लेकिन साधन-पथपर दृढ़ रहकर अपना काम बना लेना चाहिये। तन एवं मनको कसकर साधनमें जुट जाना चाहिये।

तनको कसना—भोजन कम-से-कम एवं बहुत साधारण सिर्फ शरीर-निर्वाहके लिये ही बहुत कम खर्चमें करना चाहिये। इसी प्रकार बहुत कम मूल्यके साधारण मोटे वस्त्र पहनने चाहिये एवं विषयभोगोंका त्याग करके एकान्तमें आसन लगाकर खूब परिश्रमसे साधन करना चाहिये। आरामतलब, आलसी नहीं बनना चाहिये।

मनको कसना—सब तरफसे वृत्तियोंको हटाकर केवल भगवान्‌में ही लगाना चाहिये। अभ्यास एवं वैराग्यकी सहायतासे मनको कसना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें अर्जुनसे कहते हैं—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

(गीता ६। ३५)

हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! निश्चय ही मन बड़ा चंचल एवं कठिनतासे वशमें होनेवाला है। किन्तु अभ्यास एवं वैराग्यसे वशमें किया जा सकता है। महर्षि पतंजलि भी कहते हैं— **'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।'**

तीर्थोंमें आकर किये गये अच्छे और बुरे दोनों ही प्रकारके

कर्मोंका फल अनन्त हो जाता है, अतः यहाँ आकर पापकर्म नहीं करने चाहिये। यहाँ आकर अपना समय अधिक-से-अधिक उच्च कामोंमें बिताना चाहिये। आत्मोद्धारके लिये संस्कृतमें श्रीमद्भगवद्गीता एवं भाषामें श्रीतुलसीदासजीकृत रामायण—ये दो ग्रन्थ बहुत उत्तम हैं। गीता साररूपसे है, रामायण विस्ताररूपसे है। गीताके भाव रामायणमें कथाके रूपमें है। जो भाव रामायणमें भगवान्‌की लीला, कथा एवं आचरणोंमें हैं, वे ही भाव गीताजीमें 'गागरमें सागर' के समान भरे हैं। भगवान् वेदव्यासजी कहते हैं—

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता॥

'गीता सुगीता कर्तव्या' अर्थात् गीताजीका प्रेमसे गायन करना, उसका अर्थ समझना, मनन करना और अपना जीवन गीताके सिद्धान्तोंके अनुकूल बनाना चाहिये। गीताजीके अनुसार आचरण करने एवं उसको समझनेपर अन्य शास्त्रोंके विस्तारकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीता साक्षात् भगवान्‌के मुखारविन्दसे निकली है।

एक क्षणभरके लिये भी भगवान्‌को नहीं भूलना चाहिये। भगवान्‌के नामका जप उनके स्वरूपका ध्यान एवं चिन्तन हर समय करना चाहिये, इससे बढ़कर और कोई काम नहीं है। सत्संग मिले तो सत्संग करना चाहिये। अन्यथा भगवान्‌के भजन-ध्यानमें मन लगाना चाहिये। विवेक एवं वैराग्यपूर्वक किया हुआ साधन शीघ्र सफल होता है। इसलिये भजन, ध्यान, स्वाध्यायमें अधिक-से-अधिक समय लगाना चाहिये। हर एक क्रिया करते हुए भी मनको भगवान्‌में ही लगाये रखना चाहिये। भोजन, परोपकार, सेवा करते हुए हर समय चित्तको भगवान्‌में ही लगाये रखना चाहिये। इसमें कमी नहीं आने देनी चाहिये। अन्य युगोंमें

तो भगवान्‌की प्राप्तिके लिये बड़ी कठोर तपस्या करनी पड़ती थी, लेकिन कलियुगमें तो भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये भगवान्‌की भक्ति बहुत सरल उपाय है। गीता एवं रामायणमें भी भगवान्‌की भक्तिकी बड़ी भारी महिमा गायी है—

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥

जिस साधकने रामभक्तिरूपी मणिको प्राप्त कर लिया है, उसको स्वप्नमें भी दुःख प्राप्ति सम्भव नहीं है।

खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥

जिसके मनमें भक्तिरूपी मणिका निवास है, काम-क्रोधादि उसके उसी प्रकार पास नहीं आते जैसे सूर्यके पास अन्धकार। भगवान्‌की भक्तिके प्रभावसे विष भी अमृतके समान फलदायी हो सकता है। मीराबाईके देवरने मीराको जहर दे दिया, लेकिन मीरा विषको भी भगवान्‌का प्रसाद मानकर अमृततुल्य करके पी गयी और जो देवर शत्रुतुल्य था, वही उसका भक्त बन गया। भक्तिकी महिमा अवर्णनीय है। कलियुगमें भक्तिके समान सरल साधन और नहीं है। भक्तिके बिना सुख-शान्तिकी प्राप्ति कठिन है। योगमार्ग, ध्यान, निष्कामभाव तथा अन्य साधनोंसे भी भगवत्प्राप्ति हो सकती है, लेकिन भक्तिके समान सरल उपाय और नहीं है। इसलिये सारा समय भगवान्‌की भक्तिमें ही लगाना चाहिये। भगवान् श्रीकृष्ण गीतामें कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९। २९)

मैं सब जीवोंमें समान दृष्टि रखता हूँ, न मुझे कोई प्रिय है और न मेरा किसीसे वैर है, किन्तु जो भक्तिपूर्वक मेरा भजन करते हैं उनका मेरेमें और उनमें मेरा निवास है। भगवान्‌की इस

घोषणाको खयालमें रखकर कटिबद्ध होकर भक्ति-साधनके लिये तत्पर हो जाना चाहिये, यही सबसे प्रार्थना है। हमारी इतनी-सी बात मान लो तो बेड़ा पार हो जाय। इसमें कोई भी शंकाकी गुंजाइश नहीं है, क्योंकि यह मेरे वचन नहीं हैं, साक्षात् भगवान्‌के वचन हैं, महापुरुष तुलसीदासजीके वचन हैं। श्रीतुलसीदासजीने संसाररूपी समुद्रसे पार उतरनेके लिये रामायण एवं विनयपत्रिका रूपी पुल बना दिया है। जिसका सहारा लेकर, आँख मीचकर पार हो सकते हैं। तुलसीदासजीको सभी जानते हैं कि वे कितने बड़े महापुरुष थे, जब तुलसीदासजीका शरीर विद्यमान था, तब कोई नहीं जानता था कि तुलसीदासजी इतने बड़े महापुरुष हैं। आज तुलसीदासजीका शरीर विद्यमान नहीं है, लेकिन उनके प्रतापसे रामायण-विनयपत्रिकादि ग्रन्थोंसे लाखों भूले-भटकोंका कल्याण हो रहा है। अगर महात्मा अपने शरीरके रहते हुए साधकका कल्याण कर दे तो फिर कहना ही क्या? महापुरुषोंकी वाणी एवं उनका विधान जबतक संसार कायम रहता है, तबतक कायम रहता है। नदीको पार करना बहुत कठिन है, लेकिन नदीपर पुल बन जानेपर एक चींटी भी उसको पार कर सकती है। अतः रामायणरूपी पुलका अवलम्बन लेकर हमलोग बहुत शीघ्र ही भवसागरसे पार हो सकते हैं। जो लोग तुलसीदासजीके दर्शन, भाषण एवं स्पर्शसे पवित्र हो गये, उनके लिये तो कहना ही क्या है। जबतक उनके उपदेश इस संसारमें विद्यमान हैं, तबतक संसारका उद्धार होता रहेगा। गीताका तो कहना ही क्या है, गीता सारे शास्त्रोंका सार है। कहा है—'**सर्वशास्त्रमयी गीता।**'

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

सारे उपनिषदोंकी तुलना गायसे की गयी है, उसको

दुहनेवाले गोपाल कृष्ण, अर्जुनको बछड़ा बतलाया गया। गीतारूपी उपदेश दूधके रूपमें अमृत है एवं अच्छी बुद्धिवाले साधक उसका पान करनेवाले हैं। गीताकी महिमा स्वयं भगवान् बतलाते हैं—

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

(गीता १८। ६९)

हे अर्जुन! जो मेरे इस गीतारूपी उपदेशका लोगोंमें प्रसार करेगा उसके समान मेरा प्रिय कार्य करनेवाला कोई नहीं है और न कोई संसारमें होगा ही।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः॥

(गीता १८। ७०)

हे अर्जुन! जो पुरुष हमारे इस धार्मिक संवाद गीताका अध्ययन करेगा, मैं उस साधकके द्वारा ज्ञानयज्ञसे पूजित होऊँगा। जो मनुष्य गीताका श्रद्धापूर्वक श्रवण भी करता है, उसको भी भगवान् उत्तम-से-उत्तम गति प्रदान करते हैं। इसलिये गीताका भावार्थसहित श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन करना चाहिये। इसी प्रकार रामायण एवं अन्य सभी शास्त्र प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय हैं। शास्त्रोंका बहुत विस्तार है, आपलोगोंको सार-सार बातें बतायी गयी हैं, जो बातें बतलायी गयी हैं उनको एकान्तमें बैठकर उनके अनुरूप साधन करना चाहिये। इतनी बातें अगर काममें लावें तो पर्याप्त हैं।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

दैवी-सम्पदा प्राप्त करनेका उपाय

दैवी-सम्पदा एवं आसुरी-सम्पदाका झगड़ा सदासे चलता रहा है। स्कन्दपुराणमें आता है, असुरों और देवताओंकी लड़ाई हुई, आखिरमें देवताओंकी विजय हुई। जिसमें देवताओंके-से भाव हों वह दैवी-सम्पदा है, जिसमें असुरोंके-से भाव हों वह आसुरी-सम्पदा है। क्षमा, दया, शान्ति, सन्तोष, धैर्य आदि सब लक्षण दैवी-सम्पदाके हैं एवं काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर—ये सभी आसुरी-सम्पदाके लक्षण हैं। दैवी एवं आसुरी सेनाका झगड़ा अपने हृदयमें रात-दिन ही होता रहता है। लेकिन यदि अपना सेनापति ठीक हो तो अपनी विजयमें सन्देह नहीं है। देवताओंको सेनापति अच्छे मिल गये श्रीकार्तिकेयजी, जिनके छः मुख थे। हमें भी इसी प्रकारके सेनापति मिल जायँ तो हमारी विजय हो सकती है। देवता स्वयं बलवान् हैं, फिर अच्छा सेनापति मिलनेपर विजय होनेमें क्या देरी है। हमें इन नीचे लिखे छः कर्मोंको ही सेनापति मान लेना चाहिये। भगवान्‌का नामजप, स्वरूपका ध्यान, सत्पुरुषोंका संग, सत्शास्त्रोंका स्वाध्याय, दीन-दुःखी अनाथोंकी सेवा एवं मन, इन्द्रियोंका संयम—इन छः कर्मोंको ही छः मुखवाले कार्तिकेयकी तरह सेनापति बना लेना चाहिये, फिर बेड़ा पार है। इन छः प्रकारके कर्मोंसे मन, इन्द्रियोंरूपी किलेको दृढ़ बना लेना चाहिये, ताकि कोई उसे तोड़ नहीं सके और भगवान्‌के भजन-ध्यानरूपी गोलियोंसे शत्रुके किलेको नष्ट कर देना चाहिये। **'तज्जपस्तदर्थ भावनम्'** नामजपसे पापोंका नाश हो जाता है।

प्रवचन, दिनांक—२१-३-१९५०, प्रातःकाल ९.४५ बजे, स्वर्गाश्रम।

जबहिं नाम हिरदे धरा भया पाप का नास।
मानौ चिनगी आग की परी पुराने घास॥

सत्संग एवं स्वाध्यायसे अज्ञानका नाश हो जाता है, काम, क्रोध, लोभ एवं मोह बहुत तंग करते हैं, जब मनुष्यको क्रोध आता है, वह सब कुछ भूल जाता है। इसी प्रकार कामसे मदान्ध होनेपर भी अपनी सुध-बुध खो बैठता है। अतः काम-क्रोधादि सभी अवगुणोंको भगवान्‌के भजन, ध्यान, सत्संग, स्वाध्याय, संयमरूपी गोलोंसे नाश कर देना चाहिये। इन अवगुणोंको हटानेके लिये श्रीरामका नाम रामबाण है। बुद्धिको तो समझाना सहज है, लेकिन मनको समझाना कठिन है। बुद्धि कहती है; सत्यका आचरण ठीक है, लेकिन यह मन मौकेपर धोखा दे जाता है। बुद्धि कहती है, स्त्री, पुत्रादि एवं घरमें आसक्ति ही सब झगड़ोंका मूल है, अतः इन सबसे वैराग्य करना चाहिये, लेकिन मन डिग जाता है। भगवान् कहते हैं—

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

(गीता २। ६०)

एक साधक विवेकी एवं समझदार है, साधनमें लगा है, फिर भी ये चंचल स्वभाववाली इन्द्रियाँ बलात् मनको साधनसे हटा लेती हैं। मन, इन्द्रियाँ दोनों मिलकर बुद्धिका भी हरण कर लेती हैं। भगवान् गीतामें कहते हैं—

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥

(गीता २। ६७)

मन, इन्द्रियाँ दोनों मिलकर साधककी बुद्धिको इस प्रकार हर लेते हैं, जैसे वायु जलमें नौकाको और बुद्धि विषयभोगरूपी

जलमें ले जाकर डुबो देती है। इससे अपनी हार हो जाती है, इसलिये इनपर विजय पानेके लिये साधन करना चाहिये। मन, बुद्धिका झगड़ा तो हर समय लगा ही रहता है। मन, बुद्धिकी सुलह हो जानेपर आपसमें शामिल होकर साधन करनेपर अपनी जीत हो सकती है। एक कहानी इस प्रकार आती है। एक राजा था उसके दो मंत्री थे, बड़े मंत्रीका नाम था ज्ञानसागर एवं छोटे मंत्रीका नाम था चंचल सिंह, राज्यमें दस जिले थे, उनमें दस जिलाधिकारी रहते थे, एक समय जगमोहन नामका एक ठगोंका सरदार इन जिलाधिकारियोंके पास आया और बोला—तुम्हारे राज्यमें जितनी आमदनी होती है मैं उसकी दूनी कर दूँगा, मुझे इसका ठेका दे दो, जिलाधिकारियोंने जवाब दिया कि हमारे ऊपर बड़े मंत्री एवं छोटे मंत्री हैं। उनको जब स्वीकार हो तभी ठेकेकी बात हो सकती है। तब जगमोहनने जिलाधिकारियोंसे कहा कि जितनी आमदनी होगी आधी राजाको एवं आधी आपको दे दी जायगी। इसपर जिलाधिकारी मान गया और जगमोहन लेकर चंचल सिंहके पास गया और उसको समझाया कि इस प्रकार ठेका लेनेपर आधी आमदनी राजाको दी जायगी और आधीमें चार-चार आना अपने बाँट लेंगे। तब यह बात चंचल सिंहको जँच गयी और जिलाधिकारी तथा चंचल सिंह दोनों मिलकर ज्ञानसागरके पास गये और बड़े मंत्री ज्ञानसागरसे कहा कि सरकारकी उन्नति करना अपना कर्तव्य है और यह उन्नति ठेका देनेपर हो सकती है तथा समझाया कि ठेका हो जानेपर आधी आमदनी राजाको दे दी जायगी, बाकी आधीमें अपने तीनों बाँट लेंगे। तीनों जिलाधिकारी, चंचल सिंह एवं ज्ञानसागर मिलकर राजाके पास गये और यह बात उनके जँचा दी और ठेका हो गया। अब जगमोहनने प्रजाको चूसना प्रारम्भ

कर दिया, त्राहि-त्राहि मचने लगी, लेकिन सुने कौन? तब जिलेके कुछ सुधारक लोग राजाके पास गये और राजासे कहा कि जबसे यह ठेकेदार आया है, राज्यकी तबाही हो रही है। अभी तो राज्यकी तबाही हो रही है फिर आपकी दुर्दशा होगी। यह ठेकेदार पूरे राज्यपर अधिकार जमा रहा है, फिर आपको राज्यसे निकाल देगा। दस जिलोंपर तो इसने अधिकार कर लिया है, छोटे मंत्री चंचल सिंहको भी मिला लिया है। बड़ा मंत्री थोड़ा समझदार है, जब उसको यह ठेकेदार मिला लेगा तब आपको कैद कर देगा। धीरे-धीरे ठेकेदारने बड़े मंत्रीको भी वशमें करके राजाको कैद कर लिया। लेकिन बड़ा मंत्री ज्ञानसागर अब भी कुछ-कुछ राजाके पक्षमें था। राज्यके सुधारक लोग फिर राजाके पास गये और उनको समझाया। तब राजाने कहा, मैं तो बँधा पड़ा हूँ, नजर-कैदकी तरह हूँ, बस हथकड़ीकी कमी है। चारों ओरसे आफत है, आखिरकार यह ठेकेदार मेरी जान ले लेगा। सिर्फ बड़ा मंत्री थोड़ा मुझे मानता है। तब उन सुधारकोंने राजाको उपाय बतलाया कि पहले बड़े मंत्रीको काबूमें कर लें, उसके बाद छोटे मंत्री चंचल सिंहको वशमें कर लें फिर सब काम हो जायगा। तब राजाको खूब जोश आया और उसने बड़े मंत्री एवं छोटे मंत्रीको मिलाकर दस जिलाधिकारियोंको भी वापस मिला लिया और जगमोहनको मारकर निकाल दिया। अब दृष्टान्तका भाव समझना चाहिये।

जीवात्माको राजा बनाया गया है, मनुष्यशरीर उसका देश है। प्रधानमंत्री ज्ञानसागर बुद्धिको बतलाया है। छोटा मंत्री चंचल सिंह मनको बतलाया है। दस इन्द्रियोंको दस जिलाधिकारी बनाया गया है और कामनाको ठेकेदार बनाया गया है। भगवान्‌ने कामके सम्बन्धमें कहा है—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्॥

(गीता ३। ३७)

श्रीभगवान् बोले—रजोगुणसे उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह बहुत खानेवाला अर्थात् भोगोंसे कभी न अघानेवाला और बड़ा पापी है, इसको ही तू इस विषयमें वैरी जान।

यह आसक्तिमूलक कामनारूपी ठेकेदार जाकर दस इन्द्रियोंसे मिलता है और यह इन्द्रियोंको विषयभोगरूपी घूस देता है। तब इन्द्रियाँ कामनाके साथ शामिल हो जाती हैं और चंचल मनके पास जाती हैं, मनको भी आरामरूपी घूस दी जाती है, लेकिन मन कहता है कि मेरे ऊपर बड़े मंत्री हैं। उनको भी शामिल करना चाहिये। तब कामना, इन्द्रियाँ एवं मन—तीनोंने सिखलाकर बुद्धिरूपी मंत्रीको भी लोभरूपी घूस देकर वशमें कर लिया और चारों मिलकर जीवात्मारूपी राजाके पास गये और उसको आराम-तलबीरूपी घूस देकर वशमें कर लिया जाता है। मन कामका किंकर है ही और इन्द्रियोंको भी यह कामनारूपी ठेकेदार खूब अच्छी तरह फँसाये रखता है। जब सब विषयभोगमें फँस जाते हैं तब यह जीवात्मा भी कमजोर हो जाता है। जीवात्मा मोहरूपी मदिरा पीकर मस्त रहता है। भोग-भोगनेमें प्रत्यक्ष नुकसान ही होता है। सारा शरीर नष्ट हो जाता है एवं रोग-व्याधिका घर बन जाता है। महापुरुष बारम्बार चेतावनी देते हैं, इस भोगसे तुम्हारी आयु, बल, बुद्धि, वीर्य, तेज आदि सब नष्ट हो रहे हैं। लेकिन भोगोंमें फँसा यह जीवात्मा क्या करे? मन, बुद्धि वशमें नहीं हैं, अतः मन एवं इन्द्रियोंको बुद्धिद्वारा वशमें करना चाहिये। भगवान् गीतामें कहते हैं—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः॥

(गीता ३। ४२)

इन्द्रियोंको स्थूल शरीरसे पर यानी श्रेष्ठ, बलवान् और सूक्ष्म कहते हैं; इन इन्द्रियोंसे पर मन है, मनसे भी पर बुद्धि है और जो बुद्धिसे भी अत्यन्त पर है वह आत्मा है।

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्॥

(गीता ३। ४३)

इस प्रकार बुद्धिसे पर अर्थात् सूक्ष्म, बलवान् और अत्यन्त श्रेष्ठ आत्माको जानकर और बुद्धिके द्वारा मनको वशमें करके हे महाबाहो! तू इस कामरूप दुर्जय शत्रुको मार डाल।

खयाल करना चाहिये कि बुद्धिके परे यह जीवात्मा है। पहले बुद्धिको काबूमें करना चाहिये, फिर मनको वशमें कर लेनेपर कामनारूपी शत्रुका सहजमें ही विनाश किया जा सकता है। बुद्धिसे मनको बारम्बार समझाना चाहिये कि विषयभोगोंके पासमें जानेपर अपना सबका नुकसान होगा, इससे अपना यह शरीररूपी राज्य नष्ट हो जायगा और अपना सर्वनाश हो जायगा। इस प्रकार मनको बारम्बार समझाकर वशमें कर लेना चाहिये कि हे मन जब यह शरीर भोग भोगकर नष्ट हो जायगा, तब बुद्धि, जीवात्मा और इन्द्रियाँ सभीको यहाँसे भागना पड़ेगा, इसलिये सचेत हो जाना चाहिये, अपने कामकी सिद्धि कर लेनी चाहिये, अन्यथा बड़ी भारी दुर्दशा होगी। अतः अभीसे सँभलकर भगवान्का भजन-ध्यान करके परमशान्ति एवं आनन्दकी प्राप्तिके लिये प्रयत्नशील हो जाना चाहिये, अन्यथा नतीजा बड़ा खराब होगा, पतिंगेकी-सी अपनी दशा होगी।

जिस प्रकार पतिंगा दीपकके वशीभूत होकर उसके पास जाता है और वह दीपक उसका प्राण लेनेका कारण बनता है, इसी प्रकार विषय-भोगादिसे हम समाप्त हो जायँगे, इस प्रकार बुद्धिद्वारा मनको समझाना चाहिये। गीतामें भगवान् कहते हैं—

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥

(गीता २। ६२)

आसक्तिसे कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

(गीता २। ६३)

क्रोधसे अत्यन्त मूढ़भाव उत्पन्न हो जाता है, मूढ़भावसे स्मृतिमें भ्रम हो जाता है, स्मृतिमें भ्रम हो जानेसे बुद्धि अर्थात् ज्ञानशक्तिका नाश हो जाता है और बुद्धिका नाश हो जानेसे यह पुरुष अपनी स्थितिसे गिर जाता है।

आसक्ति, क्रोध, मोह, सबके मिल जानेपर आत्माका पतन होनेमें देर नहीं लगती। क्रोधसे मोहकी उत्पत्ति होती है, स्मरणशक्तिका नाश होता है। उसके बाद बुद्धिका नाश होकर मनुष्यका पतन हो जाता है। बुद्धिद्वारा मनको समझाये, फिर इन्द्रियोंको समझाये कि यह कलेक्टरी थोड़े ही दिनोंकी है, इनको समझाकर वशमें कर लेनेपर आठ आना काम बन जाता है, आठ आना मनको वशमें कर लेनेपर हो जाता है। कर्णेन्द्रियको इस प्रकार समझाना चाहिये, जिस प्रकार मृग कर्णेन्द्रियके कारण संगीतके वशीभूत होकर प्राण खो बैठता है, उसी प्रकार तेरी दुर्दशा होगी। इसी प्रकार जिह्वा रसनेन्द्रियको समझाना चाहिये कि सूखी रोटी खायी तो क्या? मिष्ठान्न खाये तो क्या? सभीकी

मिट्टी एवं मल-मूत्रादि हो जायँगे। एक दिन शरीरको छोड़कर जाना पड़ेगा। दो दिनका ऐश आराम है। इसी प्रकार नासिकाको समझाना चाहिये, क्यों सुगन्धके वशीभूत होकर सर्वनाशकी तैयारी कर रहा है। हर एक इन्द्रियको इसी प्रकार समझाना चाहिये और समझाकर इन्द्रियोंको, मनको वशमें कर लेना चाहिये। मन इन्द्रियोंको विवेकपूर्वक समझानेकी आवश्यकता है। बीचमें घूस खा लेनेपर काम बिगड़ जाता है। इसलिये मन इन्द्रियोंको विवेकपूर्वक समझाकर वशमें कर लेना चाहिये। इस प्रकार यह मन, इन्द्रियों एवं बुद्धिकी लड़ाई बहुत दिनोंसे चली आ रही है। इतनी भयंकर लड़ाई है कि बस विनाशकी तैयारी है, इसलिये इस घरकी लड़ाईको मिटाना चाहिये। महापुरुष इस लड़ाईको मिटानेके लिये जो साधन—युक्ति बतलायें, उसको सत्य समझकर मन एवं इन्द्रियोंको तबतक समझाते रहना चाहिये जबतक ये समझ न पावें। लेकिन जिसकी बुद्धि तेज होती है, विचारशक्ति दृढ़ एवं बुद्धि अपने वशमें रहती है उसको ये मन एवं इन्द्रियाँ धोखा नहीं दे सकते। जिस प्रकार बृहस्पतिके पुत्र कचका दृष्टान्त आता है, शुक्राचार्यकी पुत्री देवयानीने कचको साम, दाम, दंड, भेद सब नीतियोंसे विवाह करनेके लिये दबाव डाला एवं सब प्रकारसे समझाया, लेकिन कच अपने धर्मपर दृढ़ रहा, क्योंकि वह बृहस्पतिका पुत्र था, इसलिये उसकी बुद्धि प्रबल थी, देवयानी उसको किस प्रकार डिगा सकती थी। जिस पुरुषमें निश्चयात्मिका बुद्धिका अभाव रहता है उसका पतन हो जाता है। झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार आदि कोई भी पापकर्म बुद्धिके विचाररूपी कमजोरीसे ही होते हैं, इसलिये बस बुद्धिको दृढ़ बना लेना चाहिये। फिर मन एवं इन्द्रियोंमेंसे किसीकी भी सामर्थ्य नहीं है कि मनुष्यको विचलित कर सके। धर्मपर दृढ़

रहना चाहिये। देवयानीने कितनी कोशिशें कीं, लेकिन कच अपने धर्मपर दृढ़ रहा, उसने कहा मेरे प्राण भले ही चले जायँ, लेकिन मैं धर्मका त्याग नहीं कर सकता। यदि बुद्धि तेज है तो मन कुछ भी नहीं कर सकता। महाराज युधिष्ठिर हर समय विपत्तिकालमें भी अपने धर्मपर डटे रहते हैं, इसलिये उनको धर्मराज कहते हैं। उनको धर्मसे च्युत करानेकी किसीकी भी शक्ति नहीं थी। इस प्रकार बुद्धिको तेज करना चाहिये। बुद्धिपर जोर लगाकर कहना चाहिये कि अपनेको अमुक काम नहीं करना है। मन एवं इन्द्रियाँ अपने स्वभाववश चाहे कितना ही लोभ दिखावें, लेकिन बुद्धिकी सहायतासे अपने कर्तव्यपर दृढ़ रहना चाहिये और विषय-भोगोंको विषके समान समझकर उनका त्याग कर देना चाहिये। जिस प्रकार विषका लड्डू खानेमें मीठा लगता है, लेकिन उसका परिणाम मृत्यु होती है, उसी प्रकार ये सांसारिक भोग दीखनेमें तो अमृतके समान लगते हैं, लेकिन इनका परिणाम विषसे भी भयंकर होता है, इसलिये इनका त्याग कर देना चाहिये। सांसारिक सुख विषके लड्डूकी तरह हानिकारक हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—

नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

जो मनुष्य-शरीरको पाकर मनको विषयोंमें लगाता है, वह महामूर्ख है, अमृतको छोड़कर विष ग्रहण करता है। परमात्माके नामका जप एवं स्वरूपके ध्यानका आनन्द इनको छोड़कर सांसारिक विषय-भोगरूपी विषको ग्रहण करे उससे बढ़कर मूर्ख कौन होगा? तुलसीदासजी कहते हैं—

ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥

उससे बढ़कर मूर्ख और कौन होगा जो पारसमणिको छोड़कर उसके बदलेमें गुंजा यानि चिरमीको ग्रहण करता है। गुंजा किसी

काममें नहीं आती और पारसमणिसे मिनटोंमें लाखों मन सोना बनाया जा सकता है। चिरमी देखनेमें तो बड़ी चमकीली होती है, लाल-लाल होती है एवं मुँह काला होता है, इसी प्रकार ये सांसारिक भोग बड़े चमकीले नजर आते हैं एवं मुँह काला होता है। जो मनुष्य इनका भोग करता है उसका मुँह काला होता है। यह मनुष्य-शरीर हमें भोग भोगनेके लिये नहीं मिला है, अपितु आत्माका उद्धार करनेके लिये मिला है। इसे जो भोगोंमें लगाता है उसको महान् दुःखका सामना करना पड़ता है। स्वर्गकी प्राप्ति भी अन्तमें दुःखको देनेवाली ही होती है, क्योंकि पुण्योंकी शक्ति क्षीण हो जानेपर मनुष्यको वापस मृत्युलोकमें आना पड़ता है। भगवान् कहते हैं—

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।

(गीता ९। २१)

वे उस विशाल स्वर्गलोकको भोगकर पुण्य क्षीण होनेपर मृत्युलोकको प्राप्त होते हैं।

इन्द्रियों एवं विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले क्षणिक सुखमें अनासक्त जो पुरुष परब्रह्मके स्वरूपमें रत रहता है उसे अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है। इसलिये हमको परमात्माके ध्यानमें मन लगाना चाहिये, विषयोंमें नहीं। सांसारिक सम्पूर्ण भोगोंका सुख समुद्रमें बुदबुदेकी तरह है, सांसारिक सुख परमात्माके ध्यानजनित सुखके सम्मुख तुलनामें भी नहीं आ सकता, इसलिये सुखके सागरको छोड़कर क्षणिक बुदबुदेको देखकर जो सुखकी कल्पना करे वह कितना बड़ा मूर्ख है। जो पारसमणिको छोड़कर गुंजाको बदलेमें लेवे, उससे बढ़कर भी कोई मूर्ख होगा? इस प्रकार विवेकसे सोच-समझकर विषय-भोगोंसे मनको हटाकर परमात्माके स्वरूपमें लगाना चाहिये।

संसारमें आजतक जितने भी महापुरुष हुए हैं और हैं, उनमें जितना त्याग एवं वैराग्य प्रधान रहता है, उतनी ही उनकी महिमा है। श्रीवेदव्यासजी महाराजके सुपुत्र श्रीशुकदेवजी महाराज कितने विरक्त थे, त्रिलोकीका ऐश्वर्य भी उनके लिये कुछ नहीं है। असली सुखकी प्राप्तिके बाद लौकिक सुखकी उससे समता ही क्या है? दधीचि मुनिको इन्द्रका सुख शूकरी, कूकरीके समान लगता है, वे भगवान्‌के ध्यानमें मस्त हैं, वे किसीकी क्या परवाह करें। वे तो अलौकिक आनन्दमें मुग्ध हैं, उनको इन्द्रासनका सुख भी घृणित एवं तुच्छ प्रतीत होता था। इस प्रकारके इस परमात्माके आनन्दमें रत सुखका अनुभव करना चाहिये एवं सांसारिक सुखोंका तिरस्कार करना चाहिये। जबतक सांसारिक सुखोंका तिरस्कार नहीं करोगे, तबतक असली सुखकी प्राप्ति नहीं हो सकती। एक चींटी चीनीके पहाड़परसे जा रही है लेकिन उसके मुँहमें नमककी कंकरी है, उस हालतमें चीनीका कैसा स्वाद है इसका वह किस प्रकार अनुभव कर सकती है। इसी प्रकार सांसारिक विषयभोगरूपी नमकको मुँहसे निकालकर भगवान्‌के ध्यानरूपी असली चीनीको ग्रहण करना चाहिये।

विवेकपूर्वक सोचकर, समझकर सांसारिक भोगोंको लात मार देनी चाहिये एवं भगवान्‌के ध्यानमें मस्त हो जाना चाहिये। विषयोंसे सर्वथा विरक्त हो जाना चाहिये। जो महात्मा इन विषयोंसे विरक्त हैं, उनकी क्या महिमा गायी जाय? आज भी संसारमें जिनमें जितना अधिक त्याग एवं वैराग्य है, उनकी ही अधिक महिमा है। त्याग एवं वैराग्यके बिना कैसा महात्मा? एक संन्यासी है जाति, आश्रम एवं व्यवहार सभी बातोंसे श्रेष्ठ हैं, सत्यभाषण भी करते हैं, परोपकार भी करते हैं, लेकिन अगर विषयोंका त्याग नहीं तो सब मिट्टी है। पण्डित, विद्वान् एवं वर्णाश्रममें श्रेष्ठ

व बुद्धिमान् होकर भी विषय-भोगोंका त्याग नहीं करे, चेला-चेलियाँ बनावे, अच्छे महीन वस्त्र पहने, मखमली गद्दोंपर बैठे, रेशमी वस्त्र धारण करे, हलवा, पूड़ी-मिष्ठान्न खाये, इत्र, तेल लगाये, पुष्पोंकी माला पहने, हारमोनियम, ग्रामोफोन, रेडियोका व्यवहार करे, सिनेमा, थियेटर एवं नाच देखे, मदिरापान करे—इस प्रकारके दुर्गुणोंसे युक्त, श्रेष्ठ वर्णाश्रमसे युक्त, बुद्धिमान् एवं शास्त्रोंका ज्ञाता भी हो, तब भी उपरोक्त दुर्गुणोंका ज्ञान होनेपर लोग उसका मुँह भी देखना नहीं चाहते। अन्य गुणोंके होते हुए भी अगर वैराग्य नहीं है तो मामला खतम समझना चाहिये। अच्छे साधु लोग कंचन कामिनी कतई नहीं छूते। आजकलके महात्मा लोग प्रायः महँगा रेशमी दुशाला कंधेपर रखते हैं, मलमली गद्दोंपर विराजमान हैं, माला पहने हैं, शास्त्र प्रवचन भी हो रहा है, सब पात्र सोनेके हैं और भी सम्पूर्ण ठाठ हैं खूब चेले हैं, बड़े अच्छे महात्मा हैं लेकिन त्याग कहाँ है। त्याग वैराग्यके बिना सब बेकार है। जहाँ कहीं भी महात्माओंकी महिमा देखी जाती है, वह त्याग वैराग्यके बलपर ही है। तीर्थ, व्रत, परोपकार, सेवादि सभी गुण हैं, लेकिन अगर विषयभोगोंका दास है, उनमें रमण करता है तो कुछ भी महत्त्व नहीं है। एक सुन्दर स्त्री है, उसका सारा शरीर देदीप्यमान है, लेकिन अगर उसकी एक आँख नहीं है तो बस उसकी सुन्दरतामें कलंक आ गया।

इसी प्रकार सब गुणोंके होते हुए भी यह विषयभोगोंकी प्रीति कलंकस्वरूप ही है। इसलिये वैराग्य बिना साधनका कोई महत्त्व नहीं है। एक साधक है उसमें अगर वैराग्य है और स्वभावसे क्रोधी है तो कोई फिक्र नहीं, वैराग्य प्रधान होना चाहिये, फिर अन्य अवगुण तो स्वतः ही चले जायँगे। एक भक्त इरंडी लाया और कहा कि बाबाजी सर्दी पड़ रही है ग्रहण कर लीजिये।

इरंडीको लेकर फेंक दिया और भक्तको भी बुरा भला सुनाया, ले जानेवालेकी स्वाभाविक ही श्रद्धा हो गयी कि इनमें विरक्ति है। इसी प्रकार एक भक्त बढ़िया पकवानादि सजाकर ले जाता है, उसको भी डाँटकर कहे कि हमारा धर्म भ्रष्ट करना चाहते हो, विषयभोगोंका स्वादू आदमी नरकगामी होता है। हटाओ इन पकवानोंको, इसी प्रकार कोई श्रद्धालु स्त्री आती है, आकर चरण छूती है बाबाजी कहते हैं खबरदार यहाँ कभी मत आना, मेरा धर्म नष्ट करना चाहती हो, पर पुरुषके पाँव छूना कितना बड़ा पाप है? श्रद्धालु स्त्री कहती है—बाबाजी माफ कर दीजिये, मुझे इस दोषका मालूम नहीं था, अपराध हो गया आदि। वास्तवमें सच्चा वैराग्य होना चाहिये। अगर अपने मनमें सच्चा वैराग्य है तो यदि हमारा व्यवहार कड़ेसे कड़ा भी है तो खप जाता है, लेकिन वैराग्यकी प्रधानता होनी चाहिये। एक साधक अनपढ़ है, वस्त्र भी सुन्दर नहीं है, लेकिन अगर वैराग्य है तो देखनेवालोंकी स्वाभाविक श्रद्धा हो जाती है। त्यागी कैसा ही हो, विद्या नहीं तो क्या है वैराग्य तो है न। उत्तम चीज वैराग्य है, वैराग्यमें सब गुण समाश्रित हैं। वैराग्यके अभावमें मनुष्य विषयलोलुप हो जाता है, फिर क्रमशः सभी अवगुण इकट्ठे हो जाते हैं। वैराग्यके अभावमें सारे अवगुण यथा झूठ, कपट, बेईमानी, दम्भ, चोरी, पाखण्ड, दिखाऊपन, भोगोंकी आकांक्षा आदि इकट्ठे होकर आपको नचावेंगे। भोगोंके साधन एवं उनकी प्राप्तिके लिये आपको दिखाऊपन, दंभ, आडम्बर रचना पड़ता है। त्याग एवं वैराग्य होनेपर ये दोष ठहर ही नहीं सकते। सत्यके आश्रित जितने भी क्षमा, दया, सन्तोष, अपरिग्रहादि गुण हैं, उन सभी गुणोंका आधार त्याग एवं वैराग्य ही है। जिस प्रकार पवित्र गंगाजलमें पेशाबकी बूँद मिला देनेपर वह कामका नहीं रहता,

इसी प्रकार वैराग्यके अभावमें एक भी दोष आ जानेपर कलंक लग जाता है और सत्यानाशका कारण बन जाता है। आजकल जिनको हमलोग साधु महात्मा मानते हैं, उनमें आस्था तभीतक रहती है, जबतक उनकी पोल नहीं खुल जाती। पोल खुलते ही समाजसे उनका बहिष्कार हो जाता है। विषयासक्तिसे हर एक जगह पद-पदपर खतरा है। जो साधक इससे बचा है वही उत्तम दरजेका है। जिनमें वैराग्य होता है, उनमें क्षमा, सत्य, सन्तोष, तितिक्षादि सभी उच्च साधुके लक्षण प्राप्त होंगे। यह एक-एक चीज परमात्माकी प्राप्ति करानेवाली है, अमृत है, इन गुणोंका संग्रह करना चाहिये। विषयोंसे वैराग्य, उपरति, त्याग, सत्यता, समता, दया, परमात्माकी स्मृति, सत्पुरुषोंका संग, स्वाध्याय, संयम—इन रत्नोंका संग्रह करना चाहिये, इनसे तुरन्त भगवत्प्राप्ति हो सकती है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

सभीका कल्याण चाहना श्रेष्ठ है

प्रश्न—भगवान्‌की स्मृति रहते हुए प्राण जानेवाले पुरुषका फिर जन्म नहीं होता, इसी प्रकार भगवद्भक्तोंको अन्तकालमें याद करनेवालेका फिर जन्म होता है क्या?

उत्तर—हो सकता है। भगवान्‌को याद करनेवाला भगवान्‌को प्राप्त होता है, उसी तरह महात्माओंको याद करनेवाला अगले जन्ममें महात्मा हो सकता है। गीतामें कहा है—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(गीता ८। ६)

हे अर्जुन! यह मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावको स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागता है उस-उसको ही प्राप्त होता है क्योंकि सदा जिस भावका चिन्तन करता है, अन्तकालमें भी प्रायः उसीका स्मरण होता है। अतः महात्माके स्वरूपको याद करनेवाला अगले जन्ममें महात्माके स्वरूपको प्राप्त होगा, किन्तु महात्माका विषय भगवत्प्राप्ति ब्रह्मज्ञान आदि करेगा तो वह स्मृति साक्षात् भगवत्प्राप्ति करानेवाली है।

प्रश्न—पूर्वमें कितने महापुरुषोंको लोग नहीं समझ सके, अतः लाभसे वंचित रह गये। इसी तरह इस समय भी अनेक महापुरुष हैं जो अपनेको छिपाये रखते हैं तथा हम पूर्ण ज्ञान न होनेके कारण उन्हें पहचान नहीं सकते। अब हम लाभसे वंचित रह जायँगे।

उत्तर—महापुरुष अपात्रके सामने प्रकट नहीं होते। अपात्रके सामने प्रकट होनेसे दम्भ, पाखण्ड फैलता है। पात्रके सामने तो

प्रवचन—मिति चैत्र शुक्ल ९, संवत् २००८, प्रातःकाल, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

महापुरुष छिप ही नहीं सकते, अगर कुपात्र हो तो उलटा फल होता है। अतः महापुरुषोंके दर्शन हो सकें ऐसा पात्र बनना चाहिये। पात्र बननेका उपाय महापुरुषोंके वचनोंका पालन करना है।

लोग हमारी निन्दा न करें, इसलिये जो सत्संगमें आना है वह महत्त्वकी चीज नहीं है। असलमें सत्संगमें बतायी हुई बातोंका पालन करना ही उत्तम है। मन बहुत पापी है। एकान्तमें भजन-ध्यान करने जायँ पर वहाँ निद्रा, आलस्यमें पड़ जायँ, भजन नहीं करें तो उससे ऐश्वर्य-भोग उत्तम है, उससे श्रेष्ठ सात्त्विक सुख है। हाँ भजन-ध्यान करते समय आलस्य, फुरणा नहीं आवे तो यह उत्तम है, किन्तु काम करते हुए भजन-ध्यान करना विशेष उत्तम है। गोपियाँ झाड़ू देती हुई, माखन बिलोती हुई मुक्तिसे बढ़कर भगवान्‌को याद करतीं, वे एकान्तमें भजन-ध्यान करनेवाले योगियोंसे श्रेष्ठ हैं, क्योंकि ये सेवा भी करती हैं और भगवान्‌का भजन-ध्यान भी करती हैं, जबकि वे केवल भजन करते हैं। अतः योगीका साधन आठ आना और गोपियोंका साधन एक रुपया है। इसीलिये गोपियाँ कहती हैं—

चलो सखी वा ठौरको जहाँ मिलें ब्रजराज।
गोरस बेचन हरि मिलन एक पंथ दो काज॥

गीतामें भी कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

(गीता ८।७)

भगवान् अर्जुनको कहते हैं कि सब समय मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। युद्ध-जैसी क्रिया भगवान्‌को स्मरण करते हो सकती है। गोपियोंमें यह बात स्वाभाविक थी, इसलिये गोपियोंको मुनियोंसे भी श्रेष्ठ बताया गया है।

अगर सत्संग श्रेष्ठ नहीं होता तो मैं आपलोगोंके बीचमें प्रचार करने नहीं आता, एकान्तमें भजन-ध्यान करता। धनकी कोई कमी नहीं है, बच्चा है नहीं, माता-पिता मर गये, स्त्री अनुकूल है, इसलिये मैं तो एकान्तमें ही रहता, परन्तु मैं तो इसीको अधिक लाभदायक समझता हूँ, मैं बनिया हूँ, घाटेमें थोड़े ही रहूँगा। हम ठग लेते हैं, ठगाईमें नहीं आते।

पतिव्रता स्त्री अपने पतिकी आज्ञानुसार चले, पुत्र अपने माँ-बापकी आज्ञानुसार चले तो यह उसका धर्म है। कर्म करते हुए ही भगवान्का भजन-ध्यान करना श्रेष्ठ है।

प्रश्न—मुक्तिसे भी बढ़कर क्या है?

उत्तर—अपनी मुक्तिका त्याग करके संसारकी मुक्ति करनी मुक्तिसे बढ़कर है। स्वयं मुक्त हो चाहे न हो, किन्तु यदि संसारके कल्याणके लिये प्रार्थना करता है, वह उच्चकोटिका है। ऐसे बहुत-से भक्त हुए हैं जैसे 'प्रह्लाद'। प्रह्लादने भगवान्के विशेष आग्रह करनेपर यह माँगा कि पिताजीने आपकी भक्तिमें बाधा डाली, अतः पिताजीके अपराध क्षमाकर उन्हें मुक्ति दे दें। भगवान्ने कहा—इनकी मुक्तिकी बात ही क्या है, तेरी तो पहलेकी सात, वर्तमानकी सात, भविष्यकी सात इस प्रकार इक्कीस पीढ़ी मुक्त हो गयी। उसने अपने लिये कुछ नहीं माँगा। अपने लिये न माँगकर दूसरोंके लिये माँगना ही श्रेष्ठ है। भगवद्दर्शनसे स्वयंकी मुक्ति हो ही जाती है। दूसरोंकी मुक्तिकी कामना करना श्रेष्ठ है, निष्कामके तुल्य है। अपनी मुक्तिकी कामना करना तो स्वार्थ है।

अगर भगवान् मुझसे कहें कि तुम सबका कल्याण चाहते हो या अनन्यप्रेम तो मैं कहूँगा कि सबका कल्याण कर दें। यहाँ यह कहा जाय कि सबमें आप भी शामिल हैं तो उस समय मैं

अपनेको शामिल नहीं समझता, किन्तु भगवान् यदि शामिल कर दें तो कोई हानि नहीं है। यदि आकाशवाणी हो, उसमें आवाज आये कि तुम सब आदमी बैठे हो, उनमेंसे एक आदमीको मुक्त कर दूँगा, अगर मैं बोलूँ मुझे, दूसरा बोले मुझे तो भगवान् वापस चले जायँगे, अगर सभी ऐसे कहें कि मेरे सिवाय किसीको मुक्त कर दें तो सबको मुक्त करना पड़ेगा। यह त्यागकी महत्ता है। अपनी इच्छाकी पूर्ति तो कुत्ता भी चाहता है, अतः अपनी इच्छाकी पूर्ति चाहना क्या बड़ी बात है।

जो परमात्माको स्वीकार कर लेता है, उसको परमात्मा प्रत्यक्ष हो जाते हैं। इसी तरह जो महात्माओंको जानना चाहता है उसके लिये महात्मा अवश्य प्रकट होते हैं। महात्मा और भगवान्में विषमता नहीं है, चाहनेवालेको वे दर्शन अवश्य देते हैं। वास्तवमें हमलोग भगवान्को चाहते नहीं, यदि चाहें तो भगवान् सर्वश्रेष्ठ हैं। अन्य सब सांसारिक तुच्छ वस्तुओंका त्याग करके एक उनकी ही लालसा बढ़ा लें तो भगवान्के दर्शन हो जायँगे। इसी प्रकार संसार-सागरसे पार होनेकी उत्कट इच्छा हो तो भगवान् एक मिनटमें पार कर सकते हैं।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

सत्संगका स्वरूप

सत्संग बहुत महत्त्वकी चीज है। सत्संग यानी परमात्माका संग, प्रेम। भगवान्‌के साथ प्रेम या संग एक नम्बरका सत्संग है। श्रद्धापूर्वक सत्संग हो तो बात ही क्या है और वह प्रेम निष्काम हो तो और भी श्रेष्ठ है, यदि अनन्य हो तो सबसे ज्यादा श्रेष्ठ है। दो नम्बरका सत्संग भगवत्प्राप्त पुरुषोंका संग है, इसमें भी अधिकारी पुरुषोंका संग और श्रेष्ठ है। भगवत्प्राप्त पुरुषोंके दो भेद हैं—एक वे जो साधनसे भगवत्प्राप्ति करते हैं और दूसरे संसारका कल्याण करनेके लिये भगवान्‌से अधिकार प्राप्त करके आये हैं। इनमें अधिकारी पुरुषोंका संग विशेष ऊँचा है। तृतीय श्रेणीका सत्संग भगवत्प्राप्तिके लिये साधन करनेवालोंका संग है, इनका संग होनेसे भगवत्-चर्चा होती है। भगवत्-चर्चा किसी भी प्रकारसे हो कल्याणकारी ही है। हमलोगोंका संग अगर उस श्रेणीमें मान लेवें तो भी भगवत्-चर्चा बड़े महत्त्वकी चीज है। चतुर्थ श्रेणीका सत्संग भगवत्प्राप्त पुरुषोंकी पुस्तकें या भगवान्‌की कही हुई पुस्तकोंका स्वाध्याय करना है, इनमें भी अर्थ भावसहित धारण करना उत्तम है और उसका अनुष्ठान और भी उत्तम है। अगर सत्संगमें कही हुई बातोंका अनुष्ठान करे तो फिर कल्याणमें क्या शंका है। मैं जो आपलोगोंकी सेवामें प्रार्थना करता हूँ, उसका मैं और आप पालन करें तो निश्चित लाभ है। कारण जो कुछ आपकी सेवामें कहा जाता है, वह गीता-रामायण आदि शास्त्रों, महर्षियोंके द्वारा रचित पुस्तकोंके आधारपर ही कहा जाता है। गीता अनादि नित्य है, भगवान्‌के द्वारा अर्जुनको निमित्त बनाकर प्रकट हुई है। इसी तरह वेदोंके दो अंग हैं। एक संहिता अर्थात् मंत्रभाग जैसे ऋक्, यजु, साम, अथर्व; दूसरा ब्राह्मण अर्थात् ऐतरेय, तैतिरीय उपनिषद् आदि। गीतामें कहा है—

प्रवचन, तिथि—चैत्र शुक्ल ९, संवत् २००८, दोपहर, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥

(गीता १७। २३)

हे अर्जुन ॐ, तत्, सत् ऐसे यह तीन प्रकारका सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका नाम कहा गया है, उसीसे सृष्टिके आदिकालमें ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादिक रचे गये हैं।

भगवान्ने गीता अध्याय ४ श्लोक २४ से ३२ तक यज्ञके नामसे अनेक प्रकारके साधन बताये हैं। प्रत्येक साधनसे भगवत्प्राप्ति हो सकती है। जो साधन गीता आदि शास्त्रोंमें बताये गये हैं वे सब निश्चय ही भगवत्प्राप्ति करानेवाले हैं। यह सब जानकर भी हमारी स्थिति ऐसी क्यों नहीं होती, इसमें वक्ता व श्रोता दोनोंको अपने-अपने दोष देखने चाहिये। अपनेमें कमी देखना न्याय है। हम अपना सुधार कर सकते हैं, दूसरा नहीं कर सकता, अगर हम अपना सुधार कर लेंगे तो हमारी उत्तम क्रियाका दूसरोंपर असर पड़नेसे उनका अपने-आप हमारे द्वारा सुधार हो जायगा। दूसरोंको बुरा समझनेवाला स्वयं बुरा है। अच्छे पुरुष न अपनेको अच्छा समझते हैं और न कहते हैं। सत्संग और परम सुखका सार भगवत्प्राप्ति होती रहे, यही है।

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥
तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

इसमें स्वर्गकी बात कही गयी वह तो समझमें आती है, पर मुक्तिका सुख भी क्षणमात्र सत्संगके सुखके बराबर नहीं होता, यह बात समझमें नहीं आयी। समझमें नहीं आये तो भी मान लेना चाहिये और मानकर अर्थात् उसमें श्रद्धा करके धारण करना चाहिये। अनुष्ठान तो धारण करनेके बाद अपने-आप ही हो

जायगा। भगवान्‌के अन्दर जो विशुद्ध प्रेम है, उसीकी यह महिमा है कि मुक्ति भी उसके सामने कोई चीज नहीं है। भगवत्प्राप्तिके बाद वे भक्त भगवान्‌के पास ही रहना चाहते हैं, सायुज्य मुक्ति भी नहीं चाहते। जो अधिकारी पुरुष हैं उनके एक क्षणके संगसे ही कल्याण हो जाता है। इसी तरह जिन्होंने साधनद्वारा भगवत्प्राप्ति कर ली है, उनका भी संग-वचन पालन करनेसे कल्याण हो सकता है। रामायणमें भगवान् राम कहते हैं—

संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥

यानी शंकर ही मेरी यथार्थ भक्तिको जानते हैं, दूसरा कोई नहीं। दूसरा अर्थ यह है कि शंकर-भक्तिके बिना उच्चकोटिकी भक्तिको नहीं प्राप्त कर सकता।

जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी॥

काशीमें भगवान् शिव मुक्तिका सदावर्त बाँट रहे हैं। अतः अगर हमारा शिवजीका संग हो जाय तो हम भगवान् रामका प्रभाव तो सुनेंगे ही, किन्तु ऐसे पुरुषका संग हुआ, जिसे भगवान्‌ने मुक्तिका सदावर्त बाँटनेका अधिकार दे दिया है तो कभी हम भी उनके संगसे सदावर्त बाँटनेवाले हो सकते हैं। अतः भगवान् शंकर-जैसे महापुरुषोंका संग मुक्तिसे भी बढ़कर है। ऐसे महापुरुषोंकी तो बात ही क्या है? किन्तु जो अधिकारी पुरुष न हों, उनको भी हम अगर अधिकारी पुरुष मानकर आज्ञापालन करें तो भी हमें शीघ्र भगवत्प्राप्ति हो सकती है। जो अधिकारी पुरुष हैं उनमें तो हम भावना करें या न करें, उनमें तो सामर्थ्य है ही, किन्तु हम जब पत्थर आदिकी मूर्तिमें भगवान्‌का स्वरूप मान लेते हैं तो वहाँ भी भगवान् प्रकट हो जाते हैं तो भगवत्प्राप्त अधिकारी मान लेनेसे भगवत्प्राप्ति होनेमें आश्चर्य ही क्या है?

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

ध्यानकी महिमा

आज मेरा बाँकुड़ा जानेका विचार है। सबसे यही कहना है कि आपलोगोंका हमारे साथ जो प्रेम है, व्यवहार है, बर्ताव है, उसके प्रतिफलमें मैं क्या कर सकता हूँ। आपलोगोंका मेरे ऊपर ऋण ही है। आपलोगोंका उद्देश्य भगवत्प्राप्ति ही है। आप अच्छी भावना लेकर आये हैं, पर मैं इसमें असमर्थ हूँ। यह भगवत्कृपा-पर निर्भर है। अतः भगवान् कृपा करके आपलोगोंको दर्शन दे दें तो मैं इस ऋणसे मुक्त हो जाऊँ, मेरी यह इच्छा है।

आगामी सप्तमीको आनेका विचार है, पर विचार करना वशमें है, होना नहीं। मैं चाहता हूँ कि वापस आकर स्थिति अच्छी देखूँ।

भारतभूमि मुक्तिका स्वरूप है। फिर यह गंगातट मुक्तिका द्वार है। इस तरह उत्तम जाति, उत्तम देश, उत्तम सत्पुरुषोंका संग और जिस युगमें बहुत ही छूट है, वह कलियुगका समय भी उत्तम है। जिस धर्ममें हम हैं वह धर्म भी उत्तम है। सब उत्तम-ही-उत्तम है, यद्यपि भगवान्के लिये कुछ भी असम्भव नहीं है, फिर भी नीति बरतनी पड़ती है। अतः वे कार्य कराकर, योग्य बनाकर मुक्ति देते हैं। इतना सब होते हुए भी काम करनेकी कमीसे हमें उनके दर्शनोंसे वंचित रहना पड़े तो उससे ज्यादा निन्दाकी बात क्या होगी।

तुलसीदासजी कहते हैं—

जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ।
सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

बहुत शास्त्रसंगत वचन हैं, अतः प्रार्थना है कि खूब कसकर

प्रवचन—संवत् २००८, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

काम करना चाहिये। काम हृदयसे होना चाहिये, फिर बुद्धि व इन्द्रियोंसे तो अपने-आप हो जायगा। परमात्माकी प्राप्तिके लिये शरीरको मिट्टीमें मिलाना पड़े तो मिला देना चाहिये। पूछनेकी आवश्यकता नहीं है। जिस किसी प्रकार भगवान् मिलें, तत्पर होकर पूरी चेष्टा करनी चाहिये, मुहूर्त देखनेकी आवश्यकता नहीं है।

आपलोग कहेंगे कि हम भगवत्प्राप्तिके लिये आये हैं तथा उसकी हृदयसे चेष्टा करते हैं, पर मैं कहता हूँ कि चेष्टामें बहुत कमी है और इसीकी पूर्तिके लिये आपसे प्रार्थना करता हूँ।

हम परमात्माका ध्यान जैसा होना चाहिये वैसा नहीं करते। ध्यानके समय नाना प्रकारकी फुरणाएँ तथा आलस्य आता है और हम उसे सहन करते हैं, यह हमारी कमी है। जैसे घरमें चोरी, डकैती होनेके बाद हम उसे बर्दाश्त नहीं करते, फिर न होनेके लिये अनेक प्रयत्न करते हैं, इसी तरह ध्यानके बीचमें आलस्य, फुरणा, संकल्प आदि आना डाका पड़ना है। हमें खूब सावधानीके साथ फिर न आनेके लिये इनपर विचार करना चाहिये।

नामजप, सत्पुरुषोंका संग, सत्शास्त्रोंका मनन, संसारसे वैराग्य, संसारसे उपरति, पवित्र एकान्त देशका सेवन—ये सब सहायक हैं, इनसे मदद लेनी चाहिये। मन इन्द्रियोंपर नियन्त्रण होनेसे इनका संयम होना सहज है। परोपकार करनेसे बहुत मदद मिलती है। मनसे सबको भगवान्का स्वरूप समझकर सेवा करे तो बहुत उत्तम है।

भगवान् गीतामें कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८। ४६)

जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाता है।

सबमें भगवद्भाव होनेपर व्यवहार करते हुए भी ध्यान करना है, ध्यान न हो तब भी निःस्वार्थभावसे सेवा करनेसे ही भगवत्प्राप्तिमें बड़ी मदद मिलती है। ध्यान हो जाय तो फिर बात ही क्या है। भगवान्‌में श्रद्धा-प्रेम होनेपर निद्रा, आलस्य कुछ आते ही नहीं, दूरसे ही भाग जाते हैं। अपना समय सत्संग, स्वाध्याय, निःस्वार्थ सेवा, एकान्तमें श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भजन, ध्यान आदिमें व्यतीत करना चाहिये। मन-इन्द्रियोंको सांसारिक भोगोंसे रोककर भगवान्‌की तरफ लगाना चाहिये। वैराग्य होनेसे उपरति भी सहज ही हो जाती है। जहाँ वैराग्य, उपरति हो जाती है वहाँ ये काम क्रोधादि विघ्न-बाधा नहीं डालते। छः घंटा शयनके सिवाय बाकी अठारह घंटा इसी काममें लगाना चाहिये। भगवान्‌से ध्यान नहीं हटाना चाहिये, इस तरह अठारह घंटा अगर भजन, ध्यान करे, तार नहीं टूटने दे तो रातको सोनेके छः घंटोंमें भी आगे जाकर स्वप्न व सुषुप्तिमें भी तार नहीं टूटेगा। स्वप्नमें भी हम भगवान्‌का जाग्रत्-अवस्थाकी तरह ध्यान करते रहेंगे।

सत्संगमें बैठकर हम सुनी हुई बातोंके अनुसार परमात्मामें ध्यान लगावें तथा ध्यान रखते हुए सुननेकी चेष्टा करें तो हमारा ध्यान और भी पुष्ट हो जायगा। रातको दस बजेसे चार बजेतक छः घंटा सोना पर्याप्त है। बाकी जाग्रत्-अवस्थामें तो भजन, ध्यानका तार टूटने ही नहीं देना चाहिये। एकतारकी बहुत महिमा है। तार टूटनेसे महिमा घट जाती है। कोई भी चीज तत्परतासे होनी मूल्यवान् है। भगवान्के निरन्तर ध्यान करनेवालोंकी शास्त्रोंमें भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी है। भगवान्ने प्रतिज्ञा की है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मेरेमें अनन्य चित्तसे स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मेरेको स्मरण करता है उस निरन्तर मेरेमें युक्त योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

यह धारणा करनी चाहिये, इतने जोरका साधन करना चाहिये कि परमात्माकी प्राप्ति बहुत थोड़े दिनोंमें अर्थात् पन्द्रह दिनोंके अन्दर हो जाय। हम इतना साधन कर लेवें कि गत बीस वर्षोंमें जो साधन किया है उससे ज्यादा हम इन पन्द्रह दिनोंमें कर लेवें। भगवान्के ध्यानका तार नहीं टूटने दें।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

संसारके कल्याणके लिये एक महात्मा ही पर्याप्त है

वाणीकी अपेक्षा श्वाससे जप उत्तम है, उससे उत्तम गुप्त व उससे ज्यादा उत्तम वह है जो भगवान्‌के स्वरूपके ध्यानके साथ किया जाय। जप यदि निष्कामभावसे श्रद्धा, प्रेमपूर्वक करे तो बहुत कीमती है। जप जैसे कीमती हो वैसे ही करना चाहिये। इसी प्रकार गीता, भागवत, रामायण, अध्यात्मविषयक पुस्तकोंको पढ़ते समय तो तत्त्वको खूब समझकर हृदयमें धारण करें तो साधन बहुत तेज हो जाय। भगवान्‌की मानसिक पूजा खूब हँस-हँसकर, मुग्ध हो-होकर करें। भगवान्‌पर विश्वास करें कि हमें जरूर दर्शन देंगे। उनका इन्तजार करता रहे कि अभी आयेंगे, पलमें आयेंगे, घड़ीमें आयेंगे। किसी प्रकारका प्रकाश दिखायी दे, आवाज सुनायी दे तो यह समझे कि भगवान् आ रहे हैं। भगवान्‌के प्रेम, गुण, तत्त्व, प्रभाव, लीला, चरित्र, नाम आदिकी बातें कानोंसे सुने और सुनकर धारण करे। नेत्रोंसे जो बात पढ़े वह हृदयमें धारण करे। नियम ले ले कि यह काम करेंगे। जहाँ मन जाय, जहाँ नेत्र जाय वहीं भगवान्‌को देखे। सबको प्रत्यक्ष भगवान्‌का स्वरूप देखकर सबकी सेवा करे। भगवान्‌की सेवामें जो आनन्द आता है उससे भी बढ़कर भगवद्‌बुद्धिसे सेवा करनेसे आता है। भगवान्‌की समय-समयपर स्तुति, प्रार्थना गद्‌गद भावसे रोकर, शरण होकर करनी चाहिये। दयालु भगवान् सुनते ही हैं।

मान-बड़ाईकी इच्छा तो साधकोंमें भी हट जाती है। सिद्धमें तो रहनी ही नहीं चाहिये। जिनमें मान-बड़ाईकी इच्छा है, वे

प्रवचन—संवत् २००८, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

अज्ञानी हैं। जहाँ ज्ञान होता है वहाँ ये बातें रह नहीं सकतीं। अत: मान-बड़ाईकी इच्छावाला महात्मा नहीं है। मान-बड़ाईकी इच्छा अहंकारसे होती है। शरीरमें अहंता ही अज्ञान है। यह न हो तो मान-बड़ाईमें सम हो जाय। गीतामें कहा है—

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

(गीता १२। १८-१९)

जो पुरुष शत्रु-मित्रमें, मान-अपमानमें, सर्दी-गर्मीमें तथा सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है, आसक्तिरहित है, वह भगवान्‌को प्रिय है। जो भगवान्‌के संकेत, आज्ञा, मनके अनुसार चलता है, वह भगवान्‌को प्रिय है। ऐसे एक पुरुषके संगसे हमारा कल्याण हो जाता है, अधिककी आवश्यकता नहीं है।

महात्माओंकी टोली नहीं होती। एक ही महात्मा पर्याप्त है। जैसे सिहोंकी टोली हो जाय तो वनको ही नहीं सारे शहरको खाली कर दे। एक ही गंगा मात्र हिन्दुस्तानको ही नहीं सारे संसारको पवित्र करनेवाली है। एक अग्निकी चिनगारी ही हजारों मन घासके ढेरको मिनटोंमें जला सकती है। ऐसे ही एक सच्चे महात्मासे यदि हम लाभ लेवें तो सारे संसारके लिये पर्याप्त है। गंगाका नाम ही न लें, पास ही न जायँ तो कैसे पवित्र होंगे। ऐसे ही महात्माओंके पास ही नहीं जायँगे, उनका कहा हुआ ही नहीं करेंगे तो कैसे उद्धार होगा? कैसे लाभ होगा?

दुनियामें अपना कल्याण करनेवाले बहुत हो गये, किन्तु अभीतक सबका कल्याण करनेवाला कोई नहीं हुआ। यह स्थान

अभीतक खाली है। अब ऐसे आदमीकी जरूरत है जो सबका कल्याण करनेवाला हो।

किसी भी चीजके लिये यह नहीं कह सकते कि यह नहीं है, क्योंकि जबतक सारी निगह नहीं कर लेवें तबतक 'नहीं है' यह कैसे कह सकते हैं? देखनेपर ही कह सकते हैं। जैसे परमात्मा हैं। कोई पूछे कैसे? प्रह्लादको मिले हैं। उसको मिले तो मुझे क्यों नहीं मिले? हम कहेंगे कि आप लायक होंगे तो आपको भी मिलेंगे। वह बोलेगा कि जबतक मुझे नहीं मिलते मैं नहीं मानता। हम कहेंगे कि तुम नहीं मानते तो मत मानो। भगवान् अपनी सत्ताके लिये तुम्हारी गवाही नहीं चाहते।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

सार बातें

आज सार-सार बातें बतायी जाती हैं, क्योंकि समय थोड़ा है और बातें बहुत हैं। आपने कहा कि आपके मनमें आयी वह कहें सो मनमें तो इतनी बातें आयी हैं कि रातके दस बजेतक भी समाप्त न हों। संक्षेपसे सार बात कही जाती है। यदि शास्त्रोंका अवलोकन करेंगे तो महीनों-के-महीने बीत जायँगे, तब भी इतनी बातें इकट्ठी नहीं मिलेंगी।

माता-बहिनोंके लिये सार बात ईश्वरकी भक्ति है, दुःखी अनाथोंका अपनी शक्तिके अनुसार उपकार करना, भगवान्‌की पूजा, सेवा, जप, ध्यान करना—यह पुरुषोंका भी, यावन्मात्रका कर्तव्य है।

इस समय लड़कीका विवाह बहुत कठिन हो गया है। दहेज लेनेवाले भाइयोंसे प्रार्थना है कि दहेज न लें। यदि यह न हो सके तो देनेवाला जो दे उससे आधा लें। यदि और अधिक लेना चाहें तो लड़कीवाला प्रसन्नतासे देना चाहे वह ले लें, पर इससे अधिक लेना तो नरकमें ले जानेवाला है।

अपने घरमें खर्च ज्यादा नहीं करना चाहिये। धन अधिक हो तो उससे दुःखी, अनाथोंकी सेवा करे, जहाँ अकाल पड़ गया हो वहाँ सहायता-सेवा करे, भूकम्प, बाढ़ आ गयी हो वहाँ सेवा करे, जिनके माता-पिता मर गये हों ऐसे अनाथ बालकोंका पालन करे, भगवान्‌का रूप मानकर पालन करे। आपत्तिकालमें फँसे दुःखी स्त्री-पुरुषोंकी सेवा करना कर्तव्य है।

सुहागन स्त्रियोंके लिये पतिव्रत धर्म श्रेष्ठ है। अपने पीहर, ससुरालमें माता-पिता, सास-ससुरकी आज्ञापालन, सेवा करे।

प्रवचन-तिथि—वैशाख शुक्ल २, संवत् २००८, सायंकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

बच्चोंके सामने अच्छा चरित्र रखे। सत्-शिक्षा दे। स्वयं पालन करे। यह विशेष महत्त्वकी चीज है। माता-पिता ही बच्चोंको दुर्गुण सिखाते हैं। अत: अच्छे चरित्र ही उनके सामने रखने चाहिये। एक कहानी है—एक स्त्री थी उसके एक बच्चा चार-पाँच वर्षका था, वह खेल रहा था। कहींसे दो आम आये, एक आम बच्चेको दे दिया। बच्चेने कहा दो आये थे न, माँने कहा एक बुची ले गयी। माँ उठी तब धोतीमेंसे वह आम गिर पड़ा। बच्चेने कहा माँ आम तो यह रहा। माँ हँस पड़ी, लड़केपर बुरा असर पड़ा। एक दिन लड़का दुकानसे चार रुपया चोरी करके ले आया, पिताने खोजा नहीं मिला। घर आकर लड़केसे पूछा। लड़का बोला बुची ले गयी, जेब देखनेपर रुपये मिल गये। तब वह हँस पड़ा। कहा कल माँका आम भी बुची ले गयी थी, पीछे वह भी मिल गया था। इससे यह शिक्षा मिलती है कि बालकोंपर घरके बड़ोंकी क्रियाओंका कितना असर पड़ता है, इसलिये सदाचारसे रहना तथा बोलना चाहिये।

जो पुरुष विधवा माताको कष्ट देता है, उसके जितने आँसू निकलते हैं, उससे जितने कण रजके भीगते हैं उतने वर्षोंतक वह घोर नरकमें जाता है। अत: जहाँतक हो होशियारीके साथ उनकी सेवा करनी चाहिये, मदद करनी चाहिये। विधवा स्त्रीका कर्तव्य है कि अपने ससुराल या पीहरवालेसे मदद ले, दूसरोंसे नहीं। शरीरपर खूब कम खर्च करे, भोजन सादा, रूखा करे, मेवा-मिष्ठान्न त्याग दे, श्रृंगारको तो कलंक समझकर त्याग दे। श्रृंगार करनेवालीका तो दर्शन भी न करे। जो अपना जीवन सद्गुण, सदाचार, ईश्वरभक्तिमें, तपस्यामें बिताती है, वही देवी है। सबके लिये यही बात है कि कम खर्च करे। रुपया बचे तो विधवा स्त्रीकी सेवा करे। विधवा स्त्रीकी सेवा सबसे बढ़कर है। एक

तरफ सौ गौओंकी सेवा, दूसरी तरफ एक विधवा स्त्रीकी सेवा—इनमें अनाथ विधवाकी सेवा श्रेष्ठ है। जो पुरुष विधवा स्त्रीकी सम्पत्ति हड़प जाता है, उसकी न तो इस लोकमें गति है और न परलोकमें है।

हम इस तीर्थमें आये हैं, यहाँ ईश्वरकी भक्ति करें। भगवान्‌का जप, ध्यान, स्तुति, प्रार्थना, कीर्तन, मानसिक पूजा ये प्रतिदिन भक्तिपूर्वक करें। एक ही उद्देश्य रखना चाहिये कि अपनी आत्माका प्रतिदिन उत्तरोत्तर सुधार हो। दोषपूर्ण क्रिया तो यहाँ स्वप्नमें भी नहीं करे। यहाँ झूठ, चोरी, व्यभिचार, निन्दा, चुगली, दुःख पहुँचाना, हिंसा, जूआ खेलना आदि जितनी पापकी बातें हैं, सबका त्याग कर देना चाहिये। जो तम्बाकू, बीड़ी पीते हैं, भाँग आदि खाते हैं, उन सबका यहाँ त्याग कर देना चाहिये। त्यागका बड़ा माहात्म्य है। इन छोटी-छोटी चीजोंके त्यागकी भी बड़ी महिमा है, बड़े त्यागकी तो बात ही क्या है। जैसे आजीवन झूठ नहीं बोलेंगे। बेटेके ससुरालसे दहेज नहीं लेंगे। न्यायका पैसा लेकर जीविका निभावेंगे। पर स्त्री-पुरुषका संग नहीं करेंगे। इस तरह यथाशक्ति तीर्थमें कुछ त्याग करके जाना चाहिये। इससे उद्धार हो सकता है।

पद्मपुराणमें एक कथा आती है* नरोत्तम नामका एक ब्राह्मण था। उसने अपने बूढ़े माता-पिताको छोड़कर वनमें तपस्या की। उसकी धोती आकाशमें सूखा करती थी। एक दिन तपस्या करते समय एक पक्षीने उसपर बीट कर दी। उसने पक्षीको क्रोधित होकर देखा तो पक्षी भस्म हो गया। उसके अहंकारके कारण आकाशमें उसकी धोती सूखना बंद हो गयी। आकाशवाणी

---

* यह कथा विस्तारसे गीताप्रेसकी प्रकाशित भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान नामक पुस्तकमें देखनी चाहिये।

सुनकर वह मूक चाण्डालके पास गया। वह माता-पिताकी बड़े प्रेमसे सेवा कर रहा था, सारा जीवन सेवामें लगा दिया, फिर शुभा नामकी पतिव्रताके पास गया, उसने उसे तुलाधार वैश्यके पास भेज दिया। वह समान भावसे व्यापार करता था, लोकोपकार भी करता था, उसने उसे सज्जन अद्रोहकके पास भेज दिया, उसने उसे विष्णुदास ब्राह्मणके पास भेज दिया। इन पाँचोंके घरपर भगवान् ब्राह्मणके रूपमें रहते थे, वे नरोत्तमको साथ-साथ सबके पास ले गये। नरोत्तमने विष्णुदाससे भगवान्के दर्शनकी प्रार्थना की, उन्होंने ब्राह्मण देवताके पास जाकर कहा कि यही भगवान् हैं। नरोत्तमने साष्टांग प्रणाम किया, भगवान्ने चतुर्भुजरूपमें दर्शन दिये। कहा मूक चाण्डाल माता-पिताकी सेवासे, शुभा पतिकी सेवासे, तुलाधार सत्य, सम-व्यवहारसे, सज्जन अद्रोहक ब्रह्मचर्यके प्रभावसे, विष्णुदास भगवान्की भक्तिके प्रभावसे परमधामको जा रहे हैं। तू माता-पिताकी सेवा कर, समय आनेपर तुम्हें भी लेने आऊँगा।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

गीतापाठमें भावकी प्रधानता

हमें उच्चकोटिका भाव बनाना चाहिये। सबमें समबुद्धि करना ऊँचा भाव है। इस तरह जितना ऊँचा भाव करें, उतना ही लाभ है। जैसे भगवद्‌बुद्धि करना ऊँचा भाव है, उसी प्रकार शास्त्रोंके स्वाध्यायमें भी उच्चकोटिका भाव हो जाय, यह मालूम हो जाय कि गीता भगवान्‌का स्वरूप ही है, गीताके स्पर्श-दर्शनसे भगवान्‌का स्पर्श-दर्शन माने तो फिर शीघ्र ही कल्याण हो जाता है। गीता साक्षात् भगवान्‌की वाङ्मयी मूर्ति तो है ही, यह भगवान्‌के हृदयका भाव है, भगवान्‌का श्वास है, अतः भगवान्‌का स्वरूप ही है। श्वास प्राण है, अतः गीता भगवान्‌का प्राण है, भगवान्‌का जीवन है। इस प्रकारसे भाव हो जाय तो उससे मुक्ति शीघ्र हो जाती है।

सिख लोग गुरु नानकदेवके ग्रन्थको बड़ी ऊँची दृष्टिसे देखते हैं, उसे वे ग्रन्थ साहब कहते हैं, उसकी पूजा करते हैं। पर हममें गीताके प्रति इतनी श्रद्धा नहीं है। गीता पढ़कर उसे जहाँ-तहाँ छोड़ भी देते हैं। जिस आसनपर बैठे हैं, वहाँ गीता पड़ी है, चरणोंके बराबरमें पड़ी है, अतः भाव कैसे हो।

भागवतमें श्रद्धा होनेपर उसकी कथा करवाते समय उसे सिरपर रखकर ले जाते हैं, खूब गाजा-बाजाके साथ उसे वेदव्यासजीकी गद्दीपर स्थापित करते हैं, पूजा करते हैं, अतः श्रद्धाकी प्रधानता है, किन्तु गीतापर बिलकुल श्रद्धा नहीं है। गीताका नित्य पाठ करते हैं, पाठ करते-करते नींद आ जाती है, कामकी जल्दी रहती है तो इस तरफ खयाल ही नहीं रखते हैं। गीताका पाठ करते नींद आ जाती है, पुस्तक हाथसे नीचे

प्रवचन—मिति वैशाख शुक्ल ६, संवत् २००८, प्रातःकाल, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

गिर जाती है, इस प्रकार अनादर करते हैं, फिर भी यह भगवान्‌की दया है कि वे हमें उस अनादरका दण्ड नहीं देते। इससे ज्यादा अनादर और क्या होगा कि जो पाठ करते हैं उसे धारण बिलकुल ही नहीं करते, आचरणमें नहीं लाते। यह श्रद्धा नहीं है। इस श्रद्धाकी पूर्ति हो जाय, गीताको साक्षात् भगवान् मान लें तो गीताके दर्शनसे भगवान्‌के दर्शन, गीतासे भगवान्‌की वाणी सुननेका-सा प्रेम होना चाहिये। भावकी कमीके कारण लाभसे वंचित रह जाते हैं। भावसे मन लगाकर पाठ करनेसे हजारों गुना अधिक लाभ हो सकता है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

निष्कामभावका मूल्य भगवान् हैं

क्रियासे जो लाभ होता है, उससे ज्यादा लाभ भावसे होता है। कोई भाई अपने घरपर आये तो उसकी सेवा भावपूर्वक करनेसे बड़ा भारी लाभ होता है। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी दुर्योधनके घरपर गये, वहाँ बाहरी खातिरदारीमें किसी तरहकी कमी नहीं थी, किन्तु प्रेम नहीं था। अतः भगवान्ने उधर नजर उठाकर ही नहीं देखा और विदुरजीके यहाँ चले गये, जहाँ साग-पात मिलना भी दुर्लभ था। किन्तु यहाँका भोजन अमृततुल्य लगा और भगवान्के आनन्दका ठिकाना नहीं रहा, क्योंकि यहाँपर भाव बड़ा ऊँचा था। हमारी भी इच्छा वहीं जानेकी होती है जहाँ प्रेम होता है। जहाँपर प्रेम न हो वहाँपर चाहे कितना ही बड़ा आदमी क्यों न हो, जानेकी इच्छा ही नहीं होती। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ बाजरेकी सूखी रोटी भी अच्छी लगती है तथा जहाँ प्रेम नहीं होता वहाँ खीर-खाँड भी अच्छी नहीं लगती, अतः खूब श्रद्धापूर्वक काम करना चाहिये। कोई भी आदमी हमारे घरपर आये तो ऐसा मानना चाहिये कि साक्षात् भगवान् ही आये हैं। ऐसा समझकर एवं आदर-सत्कारपूर्वक निष्कामभावसे सेवा करें। निष्कामभावका मूल्य भगवान् हैं। जिस तरह सांसारिक सब पदार्थोंका मूल्य रुपया है, उसी प्रकार निष्कामभावका मूल्य भगवान् हैं। अभी हमारेमें असली सेवाभाव एवं सबमें भगवद्भावकी बहुत कमी है।

भक्ति, सेवा, ब्रह्मचर्य इन तीनों साधनोंमेंसे एक-एक साधन कल्याण करनेवाला है।

प्रवचन—मिति वैशाख शुक्ल २, प्रातः ५ बजे, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

एकान्तमें ब्रह्मविचार करे, संसारका अत्यन्त अभाव करके एक परमात्माको प्रत्यक्ष देखने लगे। एक परमात्माके सिवाय किसी दूसरी वस्तुकी सत्ता है ही नहीं, इस प्रकार धारणा करते-करते संसारका प्रत्यक्ष अभाव दीखने लगे और ब्रह्मकी सत्ता हस्तामलककी तरह प्रत्यक्ष होने लगे। शरीरमें जाननेवाली शक्ति नित्य है, स्वयं अपने-आपमें स्थित है, अनन्त है। अज्ञानके कारण अल्प दिखायी दे रहा है, ऐसे अनन्त परमेश्वरका ज्ञान, ज्ञेय भी कल्पनामात्र है। इसका आधार इससे अत्यन्त रहित हो जाय तो एक विज्ञानानन्दघन ही रह जाय।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

राग-द्वेषके नाशसे प्रभुका सामीप्य

हर एक काममें स्वार्थ, मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा सबका त्याग कर देना चाहिये। जैसे कोई हमारे प्रेसमें काम करता है, किसी भी विभागका मैनेजर है तो उसे स्वार्थका त्याग तो कर ही देना चाहिये। शरीर-निर्वाहके लिये जो कुछ लिया जाता है वह स्वार्थ नहीं है, किन्तु मान, बड़ाईका त्याग कर देना चाहिये। यदि हमारेसे नीचेवाले व्यक्तिने हमारा अपमान कर दिया और हमारे मनमें यदि यह भावना उठे कि यहाँ हमारे रहनेकी क्या आवश्यकता, यहाँ तो एक नौकरसे भी अपमान हो गया तो यह भावना उतनी श्रेष्ठ नहीं है। इसी तरह झाड़ू देनेको कहा जाय तो उसे बड़े प्रेमसे करे। अपनेपर भगवान्‌की बड़ी भारी कृपा माने जो उन्होंने आज ऐसा अवसर दिया। छोटे काममें मान, अपमानका कभी खयाल ही नहीं करना चाहिये। पानी पिलाना, जूता साफ करनेका कार्य मान-अपमानका बिना खयाल किये खूब प्रेमपूर्वक यदि करे तो उसे भगवान् अवश्य ही मिल जायँ। यदि नहीं मिलें तो आप मेरा कान पकड़ लें। किन्तु हम तो अपने मानमें रहते हैं। कोई हुक्म नहीं मानता है तो उससे कहते हैं क्यों जी आपने हमारा हुक्म नहीं माना। इस तरह बड़ा अभिमान रहता है। ऐसे पुरुषको भगवान् कुत्तेकी योनि देते हैं, कहते हैं तुम्हें बहुत मान चाहिये, जाओ अब तुम्हारा यहाँ मान होगा। श्रीशुकदेवजी महाराजका आदर्श लेना चाहिये। वे जनककी सभामें जा रहे हैं, रास्तेमें बालकोंने उनपर कीचड़ फेंका, कूड़ा फेंका, गाली दी और सभामें पहुँचनेपर बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियोंने

प्रवचन-तिथि—भाद्रपद शुक्ल १०, संवत् २००८, प्रात:काल ७.३० बजे, सत्संग-भवन, गोरखपुर।

खड़े होकर उनका स्वागत किया, पुष्पवर्षा की, पर शुकदेवजी दोनोंमें समान थे। उसी प्रकार मान-अपमान दोनोंमें समान रहे, बड़ाई-निन्दामें भी समान रहे। यदि मैं किसी व्यक्तिसे कहूँ कि अमुक व्यक्तिने आपकी यह भूल बतलायी तो वह कहता है वह बिलकुल झूठ बोलता है, प्रमाणित करिये तो यह कीर्तिका दोष आया। यदि किसीको कहे कि आपमें और तो सब गुण हैं केवल क्रोध आ जाता है तो वह कहता है तुम्हें क्रोध नहीं आता है क्या? उसी समय उसे क्रोध आ जाता है। यदि वास्तवमें हमें क्रोध नहीं आता और दूसरेने कह दिया तो परीक्षा लेनेकी क्या आवश्यकता है? भगवान् दूसरे व्यक्तिके कहनेसे हमें दण्ड नहीं देंगे। दोष नहीं होनेपर कितनी ही शिकायत क्यों न की जाय, किन्तु भगवान् एक भी नहीं सुनेंगे। वे अन्तर्यामी हैं उन्हें किसीकी गवाही सिफारिशकी आवश्यकता ही नहीं है। अतः वहाँ न तो झूठी निन्दाका ही मूल्य है और न झूठी प्रशंसाका ही। यदि लाख आदमी मेरी प्रशंसा करें कि आप महात्मा हैं, भक्त हैं और मैं यदि वास्तवमें नहीं हूँ तो उन सबकी सिफारिश रद्दीकी टोकरीमें चली जायगी। भगवान्‌के घर एक पाई भी उसकी कदर नहीं है। भगवान् जानते हैं कि मैं कैसा हूँ। जिस प्रकार हम अंग्रेजी नहीं जानते, कोई अंग्रेजीमें गाली देता है, प्रशंसा करता है उसका हमपर असर नहीं होता। इसी प्रकार जो भाषा हम समझते हैं उसमें यदि कोई निन्दा-स्तुति करे तो उसका भी असर नहीं होना चाहिये। यदि हम स्तुतिमें प्रसन्न और निन्दामें अप्रसन्न होते हैं तो हममें और कुत्तेमें क्या अन्तर है। कुत्तेको प्रेमसे बुलानेपर वह पूँछ हिलाता है और अपमान करनेसे दूर चला जाता है। ऐसी मान-अपमानकी भावना तो कुत्तेमें भी है। जिनमें मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, हर्ष-शोक, सुख-दुःख

भरा पड़ा है उनमें क्या विशेषता है। जितना आपमें राग-द्वेष नष्ट हो गया उतने ही आप भगवान्‌के निकट हैं। जितना ज्यादा राग-द्वेष है उतने ही आप भगवान्‌से दूर हैं। सुख-दुःख, मान-अपमान सब द्वन्द्वोंमें समता होनी चाहिये। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

(गीता ५। १९)

जिनका मन समभावमें स्थित है, उनके द्वारा इस जीवित अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसार जीत लिया गया है, क्योंकि सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है, इससे वे सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही स्थित हैं।

इस श्लोकमें चार सूत्र हैं। एक-एक सूत्रका मूल्य यदि कोई लाख-लाख रुपया आँके तो आँकनेवाला मूर्ख है, क्योंकि ये तो अनमोल हैं। एक-एक सूत्रके द्वारा परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। इस श्लोकमें क्या-क्या बात बतलायी? उसके द्वारा इस लोकमें ही संसार जीत लिया गया अर्थात् वह जीता हुआ ही संसारसे मुक्त है। कौन? जिसकी समतामें स्थिति है। जिसका मन समतामें स्थित है उसके लिये भगवान्‌ने घोषणा कर दी कि वह जीवन्मुक्त है, क्योंकि ब्रह्म सम और निर्दोष है। ब्रह्म सम है अतः हमें भी सम होना चाहिये। जिसकी स्थिति समतामें है उसकी स्थिति ब्रह्ममें ही है। उसके पूर्वके श्लोकमें भी भगवान्‌ने समताकी बात कही है—

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥

(गीता ५। १८)

वे ज्ञानीजन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मणमें तथा गौ, हाथी, कुत्ते और चाण्डालमें भी समदर्शी ही होते हैं।

केवल समताकी बात कही और कुछ नहीं। इस श्लोकमें ब्रह्मके साथ निर्दोष और समका विशेषण क्यों किया गया? इसलिये किया गया कि वह पुरुष ब्रह्मके समान निर्दोष और सम है। दोष क्या है? झूठ, कपट, छल आदि अन्दरके दोष हैं और इन्द्रियोंके दोष भावरूप और क्रियारूपसे होते हैं। भावरूपको दुर्गुण और क्रियारूपको दुराचार कहते हैं। ये सब दोष उसमें नहीं रहते। अतः ऐसा जो निर्दोष है उसकी स्थिति ब्रह्ममें है, शरीरमें नहीं।

इसीलिये सत्संगमें आनेवाले एवं अन्य सभी भाइयोंसे प्रार्थना है कि सबको यह कसौटी कर लेनी चाहिये कि जबतक हममें राग-द्वेष, भेदभाव, पक्षपात है, तबतक हम भगवान्‌से लाखों कोस दूर हैं। इसके सिवाय आप जितनी चेष्टा करते हैं, अच्छी बात है, किन्तु भगवान्‌को तो आप प्रिय नहीं होंगे, क्योंकि भगवान्‌ने अपने प्रेमी भक्तोंके लक्षण बतलाये हैं—

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

(गीता १२। १८-१९)

जो शत्रु-मित्रमें और मान-अपमानमें सम है तथा सरदी, गरमी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सम है और आसक्तिसे रहित है।

जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है—वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है।

आसक्ति बिलकुल भी न हो इसकी क्या परीक्षा है, इसपर कहते हैं—

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(गीता २। ५७)

जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस शुभ तथा अशुभ वस्तुओंको प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है। लड़का होना, व्यापारमें लाभ होना आदि अनुकूल वस्तुओंके प्राप्त होनेपर और पुत्र मर जाना, व्यापारमें घाटा लग जाना आदि प्रतिकूल वस्तुओंके प्राप्त होनेपर किसी प्रकारका हर्ष या शोक न करे, पुत्र और धनमें प्रीति होनेपर ही उसके लिये हर्ष शोक होता है, प्रीति हट जानेपर नहीं होता।

निन्दा-स्तुतिमें समान भाव रहे, चुप रहे। परमात्माके ध्यानमें मस्त रहे तथा जो कुछ भी प्राप्त हो जाय उसीमें संतुष्ट रहे। अनिकेत अर्थात् देहरूपी मकानसे अहंता, ममता हटा दे। भय और शोकसे विचलित न हो, ऐसा स्थिरबुद्धि भक्त मुझे प्रिय है। अतः सोचना चाहिये कि भगवान्‌को कौन प्रिय है। बड़ी चीजें धारण करनी चाहिये। यदि अभीतक धारण नहीं की हो तो खूब जोशके साथ धारण करनेकी चेष्टा करे। मनमें ऐसा उत्साह लावे कि अब तो धारण करके ही छोड़ेंगे। यह निश्चय कर ले कि आजसे मेरेमें कोई दोष नहीं आवेगा चाहे जीयें या मरें। ऐसा पालन करते हुए जीनेमें भी कल्याण है और मरनेमें भी कल्याण है। दोनों हाथोंमें लड्डू है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः॥

(गीता ५। २३)

जो मनुष्य-शरीरके नाश होनेसे पहले ही काम और क्रोधसे उत्पन्न हुए वेगको सहन करनेमें समर्थ है अर्थात् काम, क्रोधको

जिसने सदाके लिये जीत लिया है वह मनुष्य इस लोकमें योगी है वही सुखी है।

कामना और क्रोधके वेगको शरीर छूटनेके पहले ही जीत ले। शरीर छूटनेके बाद तो कुछ होना जाना नहीं है। फिर तो लोग उसे जला देंगे, फूँक देंगे। अतः भगवान्‌ने यह चेतावनी दी है कि शरीर रहते-रहते जल्दी साधन कर लेना चाहिये, अन्यथा यह अवसर हाथसे चला जायगा। काम तथा क्रोधके वेगको जीतनेवाला ही योगी है और वही सुखी है।

काम या राग, क्रोध या द्वेष एक ही बात है। द्वन्द्वसे रहित हो जाय। राग-द्वेषके नाशसे काम, क्रोधका स्वतः नाश हो जायगा। रागके नाशसे ही द्वेषका नाश हो जायगा, अतः रागका नाश ही मूल चीज है। एक रागके नाशसे सब दोषोंका नाश हो जायगा। भगवान् प्रमाणपत्र देते हैं—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥

(गीता २। ५९)

इन्द्रियोंके द्वारा विषयोंको ग्रहण करनेवाले पुरुषके भी केवल विषय तो निवृत्त हो जाते हैं, परंतु उनमें रहनेवाली आसक्ति निवृत्त नहीं होती। इस स्थितप्रज्ञ पुरुषकी तो आसक्ति भी परमात्माका साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है।

इन्द्रियोंको उनके विषय नहीं भोगने देता है उसके विषय तो निवृत्त हो जाते हैं पर आसक्ति रह जाती है। यह आसक्ति परमात्माका साक्षात्कार होनेपर नष्ट हो जाती है तथा आसक्तिके त्यागसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

ऐसे ही पुरुष भगवान्‌को प्यारे हैं। अतः जिस प्रकारसे इस आसक्तिका नाश हो, उसी प्रकार प्रयत्न करे। संसारको दुःखरूप

समझनेसे हटे तो दुःखरूप समझो और मिथ्या समझनेसे हटे तो मिथ्या समझो, यदि संसारमें प्रीति रहेगी तो रोना पड़ेगा। पहले तो स्त्री, पुत्रोंको अपना मानो, फिर वे आज्ञा नहीं मानते, सेवा नहीं करते, यह देखकर रोओ। सब पदार्थोंमें स्नेह ही बन्धन है, यह स्नेह हटाना चाहिये।

हमलोग पढ़ते भी हैं पर एक बात भी धारण नहीं करते, हमारा यही हाल है। सारी गीता पढ़ ली पर एक बात भी धारण नहीं की। यदि एक भी बात धारण कर लें तो कल्याण हो जाय। इसके लिये मैं गारन्टी देता हूँ क्योंकि भगवान्‌ने गारन्टी दी है। यदि उसका कल्याण नहीं होगा तो पहले भगवान् झूठे होंगे, फिर मैं। मैं तो भगवद्वाक्योंके आधारपर कहता हूँ। यदि मनगढ़न्त कहूँ तो उसका कोई मूल्य नहीं। केवल एक आसक्तिके त्यागसे कल्याण हो जाता है।

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

(गीता ३। १९)

इसलिये तू निरन्तर आसक्तिसे रहित होकर सदा कर्तव्यकर्मको भलीभाँति करता रह। क्योंकि आसक्तिसे रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

इसी प्रकार केवल भगवान्‌की निरन्तर स्मृतिसे भी कल्याण हो जाता है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त

हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

(गीता १२। २)

मुझमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यानमें लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मुझको योगियोंमें अति उत्तम योगी मान्य हैं।

निरन्तर चिन्तनसे कल्याण बतलाया गया है, इसमें प्रेमकी या भक्तिकी कोई शर्त नहीं। भयसे निरन्तर चिन्तन करनेवालेका भी कल्याण हो जाता है जैसे मारीच। इसी प्रकार वैरसे चिन्तन करनेवालेका भी कल्याण हो जाता है। अतः जिस प्रकारसे भी हो केवल अनन्य चिन्तनसे कल्याण हो जाता है। भगवान्के वचनोंमें श्रद्धा हो तो कल्याण हो जाय, महात्मा या शास्त्रके वचनोंमें श्रद्धा हो जाय, तो कल्याण हो जाय। सब एक ही बात है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४। ३९)

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

इसमें केवल श्रद्धासे परमशान्तिकी प्राप्ति बतलायी गयी है। यदि कोई कहे कि यहाँ **तत्परः** और **संयतेन्द्रियः** ये दो विशेषण क्यों दिये गये हैं? ये विशेषण इसलिये दिये गये ताकि कोई झूठ ही यह न मान ले कि मेरी श्रद्धा हो गयी। जहाँ श्रद्धा होगी वहाँ

तत्परता अवश्य होगी, जहाँ तत्परता नहीं है वहाँ श्रद्धा नहीं है। जहाँ धूँआ होगा वहाँ अग्नि अवश्य होगी। अतः यह झूठा भ्रम निकालनेके लिये है।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३। २५)

परन्तु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निःसन्देह तर जाते हैं।

केवल महापुरुषोंकी बातोंको सुनकर उनके अनुसार आचरण करनेसे भी कल्याण हो जाता है।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।

यहाँ सुहृद् जाननेमात्रसे शान्ति बतलायी गयी है। सुहृद् जानते तो उनकी शरण हो जाते। यदि शरण नहीं हुए तो हमने उनकी सुहृदता कहाँ समझी। अतः भगवान्‌की शरण हो जाय तो उनकी कृपासे स्वतः कल्याण हो जायगा। भगवान्‌ने कहा है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८। ६२)

हे भारत! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही शरणमें जा। उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्तिको तथा सनातन परम धामको प्राप्त होगा।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(गीता ९। ३२)

हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चाण्डालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरी शरण होकर परमगतिको ही प्राप्त होते हैं। केवल शरणसे पापीसे भी पापीका उद्धार हो जाता है। महात्माके शरणसे भी कल्याण हो जाता है।

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता ४। ३४)

उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि॥

(गीता ४। ३५)

जिसको जानकर फिर तू इस प्रकार मोहको नहीं प्राप्त होगा तथा हे अर्जुन! जिस ज्ञानके द्वारा तू सम्पूर्ण भूतोंको निःशेषभावसे पहले अपनेमें और पीछे मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मामें देखेगा।

उपरोक्तमेंसे किसी एक बातके अनुसार भी साधन करें तो कल्याण हो जाय। जबतक शरीरमें प्राण है तबतक ही सब कुछ

कर सकते हैं, मृत्यु होनेके बाद कुछ उपाय नहीं है। जबतक श्वास है तभीतक आस है, इसलिये शरीर रहते चेत जाओ। मृत्युको निकट समझकर जोरोंके साथ साधनमें जुट जाओ।

जन्म-मरणरूपी फाँसी है, महात्मा लोग जो साधन बतलाते हैं वह इस फाँसीको काटनेके लिये है। कौन सुनता है? अब तो एक ही उपाय है कि भगवान्‌से गद्गद होकर, रोकर प्रार्थना करे। वे ही रक्षा कर सकते हैं। वे सर्वसामर्थ्यवान् हैं। मेरी तो सामर्थ्य नहीं है। चेष्टा करते-करते पैंतालीस वर्ष हो गये। संवत् १९६३ से मैंने लक्ष्य बनाया था कि तीनों रास्तोंद्वारा परमात्माको प्राप्त पुरुषोंका नमूना दिखला दूँ, जैसा कि भगवान्‌ने कहा है—

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥

(गीता १३। २४)

उस परमात्माको कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे ध्यानके द्वारा हृदयमें देखते हैं; अन्य कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोगके द्वारा देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं।

कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग—इन तीन प्रकारके साधक तैयार करूँ। जिस प्रकार विद्यालयोंमें श्रेणियाँ होती हैं। उससे लाखों व्यक्तियोंका कल्याण हो सकता है। मुझे तो उस समय इतना जोश था और विश्वास भी था तथा मैंने व्याख्यानमें यहाँतक कह दिया था कि यह घोर कलियुग है, फिर कलकत्ता-जैसा नगर, जहाँपर उस समयमें भी सिनेमा, थियेटर थे। ऐसे नगरमें कलियुगके सिरपर कील ठोक रहा हूँ। उस समय श्रेणियाँ बनी थीं। व्यक्तियोंके नम्बर थे। एक नम्बरमें इतने, दो नम्बरमें इतने, तीन नम्बरमें इतने आदि। ज्ञानयोग, भक्तियोग और

कर्मयोगमें भी इसी प्रकार नम्बर थे। अब ये सब बातें स्वाहा हो गयीं। अब तो मरनेकी तैयारी है। मेरे मनकी बात बतायी। मैं असफल हुआ तो कोई बात नहीं है, किन्तु ऐसी कोई आशा नहीं दिखायी देती कि कोई मेरे इस अधूरे कामको पूरा कर सकेगा। जैसे—कुमारिल भट्टके मरनेके बाद श्रीशंकराचार्यजीने सनातन धर्मका खूब प्रचार किया। राजा सगरके साठ हजार पुत्रोंके उद्धारके लिये भागीरथ सफल हुए। घोर कलियुग आ रहा है, फिर भी मैं तो अपना ढोल पीट ही रहा हूँ। कोई पागल भी कह सकता है और कोई महात्मा भी। लोग तो कुछ-न-कुछ कहेंगे ही। अपने जीते-जी जो होगा करूँगा। मरनेके बाद जो बात अंकित हो गयी, छप गयी वह रह सकती है। वह भी जबतक हमारे पीछेसे लोग छपाते रहेंगे और पढ़नेवाले ग्राहक रहेंगे तभीतक रह सकती है।

सब चीजोंसे स्नेह हटा दो या तो उन्हें स्वप्नवत् मान लो या दु:खरूप मान लो, उनकी चिन्ता ही न करो। शरीरकी भी परवाह न करो। भगवान्‌ने शरीर दिया है उसकी जिम्मेदारी उसीपर है, अन्यथा गर्भमें किसने रक्षा की थी। माताके स्तनोंमें जन्मसे पहले दूध भरना किसने प्रारम्भ किया था, अत: बादमें भी वे ही रक्षा करेंगे। अत: इन सबकी चिन्ता ही न करो। अपनी जिम्मेवारी तो केवल उन्हें स्मरण करनेकी है फिर अब तो आपकी वृद्धावस्था हो गयी। इस समय तो आपको संन्यास ग्रहण कर लेना चाहिये। पहले संन्यास जंगलमें जाकर लिया जाता था, इस समय उसके पात्र नहीं हैं, अत: मानसिक संन्यास ले लेना चाहिये। मानसिक संन्यास छोटे-बड़े सभी ले सकते हैं। शरीर, स्त्री, पुत्र, धन किसीसे भी सम्बन्ध न रखे, किसीसे भी आसक्ति न रखे—यही संन्यास है। अत: किसी भी तरह हो संसारसे

आसक्ति मिटा देनी चाहिये। फिर भगवान्‌को हृदयमें बसा ले। वह भगवान्‌का स्वरूप साकार या निराकार कैसा ही हो। संसारको निकालकर भगवान्‌को बसा लें, फिर कल्याण हो जाता है।

नारायणी कहती है कि मेरे लड़के मुझसे प्रेम करते तो मैं उनमें फँसी रहती, लड़ाई करते हैं, इसलिये उनसे मेरा मोह बिलकुल हट गया, याद भी नहीं आते। घर-घरका हाल देख लो, लोगोंको समझाते हैं पर कोई असर नहीं होता। देख-देखकर मनमें हँसी आती है, दया भी आती है। कोई उपाय नहीं है, बड़ी दुर्दशा है। जो भाई व्यापार करते हैं उनकी धनसे तृप्ति नहीं होती। रुपयोंके बांथ घाल रखी है (आलिंगन कर रखा है)। जबतक नहीं मरते तबतक रुपये बढ़ाते ही चले जाते हैं। यह भाव भगवान्‌के लिये कर ले तो कल्याण हो जाय। रुपयोंवाले मार्गसे यानी रुपया बढ़ानेवाले कामसे तो घोर नरकमें जाना पड़ेगा।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

परमात्मप्राप्तिके आठ साधन

आपने सार-सार बातें पूछी सो सार-सार बातें बतानेका विचार है, इनमें तीन परम सहायक हैं तथा आठ बातें भगवत्प्राप्ति करानेवाली हैं। इन आठमेंसे सुगम-से-सुगम किसी एकको भी धारण कर ले तो परमात्माकी प्राप्तिमें कोई शंका नहीं है। जन्म-जन्मान्तरकी जरूरत नहीं है, इसी जन्ममें या इसी जन्मके कुछ समयमें ही भगवत्प्राप्ति हो सकती है। हमारा भगवत्प्राप्ति करनेका उद्देश्य है, उसे ही मुक्ति, परम गति, परम पद या ब्रह्मकी प्राप्ति कहते हैं। यही सर्वोपरि स्थिति है।

तीन चीजें जो परम सहायक हैं वे यह हैं—

१. वैराग्य—चित्तमें विरक्ति। यह प्रत्येक साधनमें परम सहायक है। केवल वैराग्यसे मुक्ति तो नहीं होती, परन्तु जिसके चित्तमें वैराग्य होता है, उसके लिये ज्ञान, कर्म, भक्ति ये सब साधन सुलभ हो जाते हैं। यह बड़ा मूल्यवान् और उच्चकोटिका है। देह, घर, धन, पुत्र, स्त्री आदिसे आसक्ति हटानेका नाम वैराग्य है।

२. मन, इन्द्रियोंका संयम—विषयोंसे मन, इन्द्रियोंका संयम करनेसे प्रत्येक साधनमें बड़ी सहायता मिलती है। अतः इनके संयमके लिये विशेष प्रयत्न करना चाहिये। संयमके लिये वैराग्य सहायक है, वैराग्यके बिना इनका वशमें होना कठिन है।

३. कुसंगका परित्याग—जिनमें दुर्गुण दुराचार हों, ऐसे विषयी, पामर, नास्तिक पुरुषका संग न करे, उनसे लाखों कोस दूर रहे। यह भी प्रत्येक साधनमें सहायक है।

प्रवचन—मिति वैशाख शुक्ल ७, संवत् २००८, प्रातः १० बजे, गीताभवन, स्वर्गाश्रम।

अब साक्षात् भगवत्प्राप्ति करानेवाली आठ बातें बतलायी जाती हैं। उनमें कोई-कोई साधन कठिन भी है, पर जिसे जो सरल मालूम हो, उसे उसीका साधन करना चाहिये, कठिनको छोड़ सकते हैं।

१. सत्संग—महात्माओंके संगका नाम सत्संग है। सत्संगके चार भेद कल बतलाये थे—१. परमात्माका संग २. महापुरुषोंका संग ३. साधक पुरुषोंका संग ४. सत्-शास्त्रोंका संग।

भगवत्प्राप्त पुरुष मिलने बड़े दुर्लभ हैं, किन्तु मिल जानेपर परमात्माकी प्राप्ति बड़ी सुगमतासे हो जाती है। यदि महापुरुष नहीं मिलें तो साधकों (आत्माके कल्याणके मार्गमें चलनेवालों)-का संग भी परमात्माकी प्राप्तिमें बड़ा सहायक है। सत्संगकी महिमा शास्त्रोंमें बहुत गायी है। गीतामें कहा है—

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३। २५)

परन्तु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निःसन्देह तर जाते हैं।

इसके लिये शास्त्रोंमें अनेकों प्रमाण हैं। जाबालाका पुत्र सत्यकाम गुरुकी आज्ञापालनसे मुक्त हो गया। आरुणी धौम्य मुनिकी आज्ञापालनसे मुक्त हो गया। केवल आज्ञापालनसे ही मुक्ति हो जाती है, फिर यदि श्रद्धा साथमें हो तो बात ही क्या है। जो भगवान्पर निर्भर हो जाता है, उसे किसी भी प्रकारकी चिन्ता नहीं रहती, उसकी सारी जिम्मेवारी भगवान्पर रहती है।

२. श्रद्धा—महात्माओंमें जो श्रद्धा होती है वह शीघ्र भगवत्प्राप्ति करानेवाली होती है। गीतामें कहा है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४। ३९)

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

हमारी जैसी श्रद्धा होती है वैसी हमारी इज्जत होती है। श्रद्धा बहुत उच्चकोटिकी चीज है। प्रत्यक्ष-सदृश विश्वासको श्रद्धा कहते हैं और प्रत्यक्षसे बढ़कर विश्वास हो उसका नाम परम श्रद्धा है। जैसे द्रुपदकी शिवजीके वचनोंमें परम श्रद्धा थी, उन्होंने उनके वचनोंपर श्रद्धा करके लड़कीको भी लड़का माना, उसका समयपर विवाह भी लड़कीके साथ कर दिया, शिवजीके वचनोंमें श्रद्धा थी। बादमें वह लड़का हो गया। यह परम श्रद्धाका नमूना है। जितनी उच्चकोटिकी श्रद्धा होगी, उतनी ही परायणता होगी। ईश्वर, महात्मा, शास्त्र और परलोक इन चारमेंसे किसी एक पर भी श्रद्धा होनेसे कल्याण हो जाता है। नचिकेताका परलोकमें श्रद्धा करनेसे कल्याण हो गया।

परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब होनेका एकमात्र कारण श्रद्धाकी कमी है, कमकसपना, साधनमें ढिलाईमें भी श्रद्धाकी कमी ही कारण है।

३. प्रेम—परमात्मा, ईश्वर, सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार, सगुण साकारमें भी राम, कृष्ण, शिव, विष्णु जिस किसीसे भी प्रेम करे, उसे सर्वोपरि समझे और ऐसा समझकर उनसे अनन्य प्रेमपूर्वक भक्ति करे। इस एक साधनसे ही परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। केवल अनन्य विशुद्ध प्रेम होना चाहिये। केवल भगवान्‌के लिये ही भगवान्‌से ही प्रेम हो। भगवत्प्राप्तिका लक्ष्य

रखकर भगवान्‌से प्रेम करनेसे शीघ्र ही कल्याण हो जाता है। शास्त्रोंमें अनन्यभक्तिकी बड़ी प्रशंसा गायी है। गीतामें भी कहा है।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

प्रेमकी रगड़से भगवान् प्रकट हो जाते हैं; प्रेम उच्चकोटिका होना चाहिये फिर भगवान्‌के मिलनेमें विलम्ब हो ही नहीं सकता।

४. सेवा—निःस्वार्थभावसे (स्वार्थ त्यागकर) दूसरेकी सेवा करना, हित करना चाहिये। न करनेकी अपेक्षा सकामभावसे भी सेवा करनी अच्छी है, पर सकामभावसे सेवा करनेसे परमात्माकी प्राप्ति होना दुर्लभ है। निष्कामभाव होनेसे मात्रा थोड़ी होनेपर भी उस सेवासे परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र हो जाती है। भगवान्‌ने कहा है—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २। ४०)

इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है; बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर देता है।

इसलिये कटिबद्ध होकर निष्काम कर्मयोग करनेसे जल्दी कल्याण हो जायगा। गीता ३। १९ में कहा है—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥

इसलिये तू निरन्तर आसक्तिसे रहित होकर सदा कर्तव्यकर्मको भलीभाँति करता रह। क्योंकि आसक्तिसे रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

५. परमात्माका तात्त्विक ज्ञान—इसमें करना कुछ नहीं पड़ता, केवल परमात्माके स्वरूपका अनुभव होना चाहिये। उससे ही परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। केवल यह ज्ञान होना चाहिये कि परमात्मा क्या है? ज्ञान होनेके बहुत-से उपाय बतलाये हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग, महापुरुषोंका संग, श्रद्धा, भक्ति आदि—इन सबसे ज्ञान होता है। ज्ञान होनेके साथ ही परमात्माकी प्राप्ति अपने-आप हो जाती है। ज्ञान होनेसे पापीसे पापीका भी उद्धार हो जाता है।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि॥

(गीता ४। ३६)

यदि तू अन्य सब पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाला है; तो भी तू ज्ञानरूप नौकाद्वारा निःसन्देह सम्पूर्ण पाप-समुद्रसे भलीभाँति तर जायगा। इस ज्ञानकी प्राप्ति भगवत्-कृपासे भी होती है।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। १०)

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

चाहे जिस किसी साधनसे हो ज्ञान होना चाहिये। ज्ञान होते ही '**प्रकाशयति तत्परम्**'। अतः सब काम छोड़कर ज्ञानकी प्राप्तिमें लग जायँ। ज्ञान होनेपर परमात्माकी प्राप्ति अपने-आप ही हो जायगी।

६. भगवान्‌की पूजा—इससे भी भगवत्प्राप्ति हो सकती है। मानसिक पूजासे भगवत्प्राप्ति शीघ्र हो जाती है। मन्दिरोंमें पूजा, आरती पुजारी करता है, दर्शन दूरसे होता है, मन भी इधर उधर चला जाता है, इससे श्रेष्ठ घरमें भगवान्‌की मूर्तिकी पूजा करना है, क्योंकि घरमें पूजा, आरती, भोग आदि सेवा अपने हाथोंसे करते हैं। अतः मन इधर-उधर कम जाता है। एक तो नौकरसे पिताकी सेवा करवाये और एक अपने हाथसे करे तो अपने हाथसे करना अधिक कीमती है। मानसिक पूजा सर्वश्रेष्ठ है। चाहे हृदयाकाशमें भगवान्‌की मूर्ति स्थापित करके करे अथवा बाहरके आकाशमें। सारी सामग्री मनसे रचकर क्रिया भी सब मनसे करे, ऐसा होनेसे भगवत्प्राप्ति शीघ्र होती है। मानसिक पूजामें मन इधर-उधर नहीं जा सकता है। भगवान्‌की पूजा प्रेमसे होनी चाहिये। प्रेमसे भगवान् प्रत्यक्ष प्रकट हो जाते हैं। भगवान्‌ने कहा है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

(गीता ९। २६)

पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो भक्त मेरे लिये प्रेमसे अर्पण करता है उस शुद्ध निष्काम प्रेमी भक्तका प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ मैं सगुण रूपसे प्रकट होकर प्रीतिसहित खाता हूँ।

प्रेम होनेपर भगवान् साक्षात् प्रकट होकर खाते हैं। द्रौपदीका पत्ता भगवान्‌ने प्रकट होकर खाया, शबरीके बेरसे ही प्रसन्न हो

गये, रन्तिदेवके जलको ग्रहण किया, गजेन्द्रके पुष्पको स्वीकार किया। ये चारों चीज जुटानेकी भी जरूरत नहीं, केवल एक वस्तुसे भी प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् तो प्रेमके भूखे हैं पदार्थोंके नहीं।

७. परमात्माका ध्यान—इससे भी परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। ध्यान अनन्य होना चाहिये। लक्ष्य भगवान्‌का होना चाहिये। भगवान्‌के सिवाय अन्य किसीसे प्रेम करे ही नहीं, ऐसा करनेसे ही शीघ्र काम बनता है। मेरे खयालसे तो पन्द्रह दिनमें ही भगवत्प्राप्ति हो सकती है। ध्रुवजीने साढ़े पाँच महीने ध्यान करनेपर भगवत्प्राप्ति की थी, हम वैसा साधन करें तो साढ़े पाँच दिनमें ही हो सकती है। वैसा ध्यान आजकल होना मुश्किल है। उन्होंने श्वास रोककर, निराहार रहकर, एक पैरसे खड़े होकर ध्यान किया, पर आजकल तो इसके बिना भी भगवत्प्राप्ति हो सकती है। बस परमात्माका ध्यान होना चाहिये। ध्यान करते-करते हम चाहे सो करें, परन्तु ध्यानका तार न टूटे। गीतामें अनेक जगह ध्यानका प्रसंग आया है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें

युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

केवल परमेश्वरके निरन्तर ध्यानसे कल्याण हो जाता है।

८. नाम-जप—यदि इसके लिये भी आप यही कहेंगे कि यह भी नहीं होता तो फिर जन्मो और मरो।

नाम-जपका बहुत माहात्म्य है। दिन-रात जप करना चाहिये। मृत्यु होनेके पहले अन्तिम क्षणतक जप करे तो परमात्माकी प्राप्ति अन्तकालके स्मरणसे अपने-आप हो जायगी। भगवान्‌ने और यज्ञोंको तो अपनी प्राप्तिका साधन बतलाया है, किन्तु जपयज्ञको तो अपना स्वरूप बतलाया है।

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि (गीता १०। २५)

कबीरदासजी कहते हैं—

जबहिं नाम हिरदे धरा भया पाप का नास।
मानौ चिनगी आग की परी पुराने घास॥

गीतामें कहा है—पापीसे पापी नाम जपके प्रभावसे महात्मा हो जाता है।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरेको निरन्तर भजता है वह साधु ही माननेयोग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है यानी उसने भली प्रकार निश्चय कर लिया कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ चीज ही नहीं है।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३१)

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

तुलसीदासजी कहते हैं—

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

नाम-जपके प्रभावसे ज्ञान, पापोंका नाश, मुक्ति सब हो जाती है। ये आठ साधन आपको बतलाये हैं जो सबसे बढ़कर हैं। उनमेंसे किसी एक साधनसे भी कल्याण हो जाता है, जो सरलसे सरल लगे चुनकर उसके लिये कटिबद्ध होकर प्रयत्न करनेपर उस एक ही साधनसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। यदि आठों काममें लिये जायँ तो फिर बात ही क्या है।

सत्संग श्रद्धा प्रेम हरि सेवा पूजा ध्यान।
ज्ञान जप इक इक सभी मुक्तिदायक जान॥

आठों बातोंका उपर्युक्त दोहा है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

क्रियाकी अपेक्षा भावकी विशेषता

सब चीजोंमें क्रियाकी अपेक्षा भावकी प्रधानता है; भाव ऊँचा होना चाहिये। भगवान् सबमें हैं, अतः भगवान्‌को एवं भगवान्‌के भक्तको भी भगवत्तुल्य समझकर सेवा करे तो बहुत उच्चकोटिका फल मिलता है। भगवान् महात्माको अपना स्वरूप बतलाते हैं। महात्मा बुद्धि हो जानेपर सेवा करते समय प्रेमके कारण इतनी मुग्धता हो जाती है कि हम जो क्रिया करते हैं उसमें गड़बड़ हो जाती है। यदि भगवद्भाव हो जाय तो कहना ही क्या है? विदुरजीके यहाँ जब भगवान् पधारे तो विदुरानीजी मुग्ध हो गयीं, होश नहीं रहा। भगवान्‌को केलेके गिरीकी जगह छिलका खिलाने लगीं और भगवान् प्रेमसे खाने लगे। विदुरजी घर आये, देखा भगवान्‌को केलेका छिलका खिला रही है। उन्होंने कहा क्या कर रही है, विदुरानीको होश हुआ कहा गलती हो गयी। विदुरजी केले अपने पास लेकर केलेका गूदा खिलाने लगे, भगवान्‌ने कहा जो स्वाद छिलकोंसे आ रहा था वह स्वाद नहीं आया। ज्ञानपूर्वक, विधिसहित किया हुआ भी भाव कम रहनेके कारण उतना श्रेष्ठ नहीं है, जितनी भावकी प्रधानता है। भगवान् तो भावके भूखे हैं और बड़े प्रसन्न होते हैं। सबकी सेवा करते समय ऐसा ही भगवद्भाव रखना चाहिये।

यदि सब प्राणियोंमें भगवद्भाव नहीं हो तो जहाँ-जहाँ भगवद्भाव रखनेके लिये विशेषतासे कहा गया है उनमें करना चाहिये। जैसे—सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, भगवद्विग्रह आदि। भावकी बातें अभीतक अप्रत्यक्ष हैं। ऐसे बहुत-से भाव हैं जो अभीतक प्रकट ही नहीं हुए हैं। जिनका कोई आदर्श ही नहीं है।

प्रवचन—मिति वैशाख शुक्ल ८, संवत् २००८, प्रातः ७ बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

उच्चकोटिके सब भाव हमारी बुद्धिमें समा नहीं सकते, क्योंकि हमारी बुद्धि घड़ेके तुल्य और भगवान्का भाव सागरके तुल्य है। अतः गागरमें सागर कैसे समावे। भगवान्का वास्तविक भाव भगवान्की कृपासे ही समझमें आता है। और कोई उपाय नहीं है। फिर मुझे बतानेमें संकोच होता है, क्योंकि दम्भी पाखण्डी आदि अपनेको महात्मा प्रसिद्ध करके मेरे बताये हुए भगवद्भावको अपना प्रभाव बताने लगे, अथवा मैं जो प्रभाव बतलाता हूँ, उसको मेरेपर ही लादने लगे। यदि उच्चकोटिका भाव हो जाय तो उसी क्षण भगवत्प्राप्ति हो जाती है। ईश्वर और महात्मामें गुप्त भाव रखनेसे ज्यादा लाभ होता है। वह प्रकट होनेपर महत्त्व कम हो जाता है, क्योंकि भगवान् समझते हैं कि इसके अन्दर तो मान-बड़ाईकी चाह है, अन्यथा प्रकट करनेकी क्या आवश्यकता है।

एक उच्चकोटिका भक्त था, वह गुप्त भजन करता था। घरवालोंको किसीको भी मालूम नहीं था। लोग कहते राम-राम किया करो तो वह हँस देता था, मौन हो जाता था। लोग समझते इनको भगवान्का नाम अच्छा नहीं लगता। एक दिन वह सो रहा था, सोते हुए रामनाम मुखसे निकला। घरके लोग उस समय जग रहे थे। घरवाले बहुत प्रसन्न हुए कि हमलोग चेष्टा करके हार गये, किन्तु एक बार भी भगवान्का नाम मुखसे नहीं निकला। आज स्वप्नमें स्वतः ही निकल गया। प्रातःकाल होनेपर घरवालोंने उत्सव मनाया। उसने देखा आज उत्सवका दिन भी नहीं है क्यों उत्सव मनाया गया? उसने पूछा, घरवालोंने उत्सवका कारण बता दिया, उसने कहा क्या मेरे मुखसे सचमुच ही रामनाम निकल गया? उन्होंने कहा हाँ। यह सुनते ही उसके प्राण उसी समय निकल गये। सोचना चाहिये कि कितना गुप्तभाव था। भगवान्के स्वरूपमें नित्य स्थिति थी। भक्तिका

भाव जितना ही गुप्त होगा उतना ही उत्तम होगा। अतः ईश्वर और महात्माओंके प्रति गुप्तभावका ज्यादा महत्त्व है। यदि उनको अपने मनका भाव दिखलाते हैं तो उनको महात्मा कहाँ समझा, अन्यथा उन्हें दिखलानेकी क्या आवश्यकता थी। दिखलानेका अर्थ यह है कि वे हमारे भावको समझते नहीं हैं। किन्तु प्रेमको तो हम ही समझ जाते हैं, फिर ईश्वर और महात्माओंकी बात ही क्या है। हमारे मनमें यदि यह निश्चय हो जाय कि महात्मा हमें भगवान्‌के दर्शन करा सकते हैं तो निश्चय ही वे दर्शन करा सकते हैं, चाहे उनमें सामर्थ्य हो या नहीं। प्रह्लादका विश्वास था कि खम्भेमें भगवान् हैं तो खम्भेमेंसे भगवान्‌को प्रकट होना पड़ा। जब पत्थरमेंसे भगवान् प्रकट हो सकते हैं तब महात्मापर विश्वास होनेसे वे भगवान्‌को प्रकट करा दें तो आश्चर्य ही क्या है? परमात्माका तत्त्व समझमें आ जाय तो उसी समय परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

पूज्य श्रीस्वामीजी महाराजका प्रश्न—उसकी स्थितिके अनुकूल कोई महात्मा बतला दे कि तेरे लिये अमुक साधन ठीक है, वह उसके अनुसार साधन करे तो बहुत जल्दी भावकी विलक्षण स्थिति हो सकती है। आपने गुप्तभावकी बात कही सो ठीक है, किन्तु यदि कोई उसका अधिकारी न हो और प्रकट कर दे (हाँ दम्भ पाखण्डके उद्देश्यसे नहीं) तो भी उसको अच्छा रास्ता मिल सकता है।

श्रीसेठजी—रास्ता बता सकते हैं, पर पहचाननेवाले भी होने चाहिये। जिसकी नीयत अच्छी है, दम्भ नहीं है, दम्भ करना नहीं चाहता है। वहाँ पर दम्भ यदि हो भी जाय तो वह परमात्माकी कृपासे शीघ्र मिट जाता है। जैसे मैंने किसीको सत्कार्यके लिये दो सौ रुपये दे दिये और उसको मैंने प्रकट भी

कर दिया, इसलिये कि दूसरे लोग भी हमारे देखा-देखी दे देंगे, यह बात लोकसंग्रहके लिये तो ठीक है, किन्तु यही यदि मान-बड़ाईके उद्देश्यसे हो तो सकाम है। अतः क्रिया एक होनेपर भी भावमें बड़ा अन्तर है।

जैसे कई आदमी हैं, उनमें किसीको अन्नकी, किसीको वस्त्रकी, किसीको किसीकी अलग-अलग आवश्यकता है, परन्तु सबका मूल्य रुपया है। केवल एक रुपयेसे ही सबकी अलग-अलग आवश्यकताकी पूर्ति हो जाती है। इसी प्रकार यहाँ एक भाव होनेसे सबकी पूर्ति हो सकती है। लौकिक पदार्थोंकी पूर्ति रुपयोंसे और पारमार्थिक पूर्ति भावसे होती है।

वह कौन-सा भाव है जिस एकके सुधारसे सबका सुधार हो जाय? ज्ञानके सिद्धान्तसे एक ब्रह्मज्ञानसे ही सबका ज्ञान हो जाता है। जो कुछ है सच्चिदानन्दघन परमात्मा है, उसके सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं।

भक्तिके सिद्धान्तसे सबको परमात्माका स्वरूप समझकर उपासना करनी चाहिये। पशु, पक्षी, जन्तु, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी, संन्यासी इन सबको परमात्माका स्वरूप समझना चाहिये। भागवतमें कहा है—**प्रणमेद् दण्डवद् भूमावाश्वचाण्डालगोखरम्** (भागवत ११। २९। १६)।

गदहेसे लेकर ब्रह्मातक साक्षात् भगवान् समझकर साष्टांग प्रणाम करे, यह क्रियासे न हो तो भावसे करे। क्रियामें तो दम्भ भी प्रवेश कर सकता है पर भावमें तो इसकी गुंजाइश ही नहीं है। दम्भ-पाखण्डका हृदयके गोपनीयभावमें प्रवेश नहीं हो सकता, अतः गुप्त भाव बहुत दामी है।

जिस प्रकार रुपयोंसे सब सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्ति हो जाती है, इसी प्रकार भावसे सबकी प्राप्ति हो जाती है। अतः

भगवद्भाव बढ़ावे, बाहरके दिखाऊपनेको हटाकर भीतरके भावको बढ़ावे। जबतक प्रह्लादने अपना भाव गुप्त रखा, तबतक उनपर कोई विपत्ति नहीं आयी, किन्तु ज्योंही उन्होंने नवधा भक्ति प्रकट की, त्योंही उनपर विपत्ति आनी शुरू हो गयी, परन्तु प्रह्लादमें तो झेलनेकी ताकत थी। इसी तरह हम भी यदि अपने गुप्तभावको प्रकट कर दें और कष्ट झेलनेकी शक्ति न हो तो बड़ी विपत्तिका सामना करना पड़ सकता है। कुछ स्त्रियाँ कहती हैं कि हम भजन-ध्यान आदि करती हैं, किन्तु हमारे घरवालोंको बुरा लगता है। मेरा उनसे कहना है कि यह चीज उनके सामने प्रकट ही नहीं होनी चाहिये। प्रकट होनेसे ही घरवाले कहते हैं, अतः अपना भगवद्भाव प्रकाशित ही नहीं होने दे, बल्कि लोग यह समझें कि यह भक्तिके पास ही नहीं बैठा है। जो मनुष्य थोड़ी-सी भक्तिको ज्यादा बताता है, उसे तो भगवान् दूर फेंक देते हैं। जो जितनी करता है उतनी ही बतलाता है, उसे फेंकते तो नहीं हैं, पर वह वहीं पड़ा रहता है। अबतक बहुत-से भाइयोंका यही हाल है। जो जितना छिपाता है वह उतनी ही जल्दी भगवत्प्राप्ति करता है। फिर भी जान-बूझकर हमें ऐसी कोई उलटी क्रिया नहीं करनी चाहिये, जो अनुचित हो, क्योंकि इसमें भी दम्भ आ जाता है।

ऐसा समझे कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ। क्रिया तीन प्रकारसे होती है—१. अनिच्छा २. परेच्छा ३. स्वेच्छा। इसमें स्वेच्छासे तो कुछ करे ही नहीं। अनिच्छा और परेच्छासे जो कुछ हो, उसे भगवान् कर रहे हैं, करवा रहे हैं, ऐसा समझे। जो हो उसीमें आनन्द माने। फिर केवल आनन्द-ही-आनन्द रह जायगा।

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते॥

(गीता ४। २२)

जो बिना इच्छाके अपने-आप प्राप्त हुए पदार्थमें सदा सन्तुष्ट रहता है, जो हर्ष-शोक आदि द्वन्द्वोंसे सर्वथा अतीत हो गया है—ऐसा सिद्ध और असिद्धिमें सम रहनेवाला कर्मयोगी कर्म करता हुआ भी उनसे नहीं बँधता।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥

(गीता ७। १९)

बहुत जन्मोंके अन्तके जन्ममें तत्त्वज्ञानको प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है—इस प्रकार मुझको भजता है वह महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है।

सबसे ऊँचा भाव क्या है? सब कुछ वासुदेव ही है इसको खयालमें रखकर ऐसा भाव बनाना चाहिये। जब भाव बढ़ जायगा तो इसकी पूर्ति एक क्षणमें हो सकती है, अन्यथा अपनी चालसे तो वर्षोंके वर्ष बीत गये, यह चाल धीमी है। जब यह मालूम हो गया कि साधन भावसे ही होता है तो उसी क्षण इसे धारण कर लेना चाहिये। यह माने ही नहीं कि भाव नहीं बढ़ सकता। यह मान लेनेसे कि हमारा भाव बढ़ सकता है, भाव बढ़ जाता है। फिर भावके अनुसार अपने ही समझ आ जायगी। सुननेके साथ भाव हो जाय तो समझ तो फिर अपने-आप ही आ जाती है, परन्तु वक्तामें विश्वास नहीं है तो समझ कैसे आये। मैं बार-बार कहता हूँ कि जो कुछ मैं कहता हूँ, वह सब गीता भगवान्‌की वाणीके अनुसार कहता हूँ। मैं आपलोगोंको इतना परिचय, इतनी दलीलें, इतना प्रमाण देता हूँ, तब भी आप नहीं मानते। यदि कथनमात्रसे मान लेते तो इतनी दलीलोंकी आवश्यकता ही क्या थी?

प्रश्न—इतना होनेपर भी कहाँ मानते हैं?

उत्तर—मत मानो। मैं तो दलीलें देता रहूँगा। यदि इससे बढ़कर और कोई काम समझमें आ जायगा तो इसे छोड़ दूँगा। नहीं तो आपलोगोंको और समझाता रहूँगा।

भाव बनाना भगवान्‌की दयापर निर्भर है यह मान्यता भी ठीक है, क्योंकि भगवान्‌की दयासे भाव होता है और वह क्षणमात्रमें हो सकता है। इसपर पूर्ण विश्वास हो जानेसे अपने-आप काम हो जायगा। यह तो निश्चित है ही कि भगवान्‌की दया सबपर है। वह दया अपार और असीम है। हमारी जितनी मान्यता है, उससे अनन्तगुनी ज्यादा है। फिर वह प्रतीत क्यों नहीं होती? इसमें श्रद्धाकी कमी ही कारण है।

अतः भगवद्भाव समझमें आ जाय तब तो बहुत ही अच्छा है। यदि समझमें नहीं आये तो भी मान लेना चाहिये। आगे जाकर अपने-आप समझमें भी आ जाता है। जैसे व्याकरणमें संज्ञा-प्रकरण पढ़ाते समय गुरु कहता है कि पहले मान लो, आगे जाकर अपने-आप समझमें आ जायगा। इसी प्रकार पहले मान लेना चाहिये कि परमात्माके सिवाय कुछ है ही नहीं, फिर अपने-आप समझमें आ जायगा। हम कहें कि इसे महात्मा मान लो तो आप कहते हैं कि महात्माका मतलब क्या है? मतलब आगे जाकर समझमें आ जायगा। पहले मान लो। समझनेके बाद महात्मा बन जाओगे।

समता बहुत ऊँचे दर्जेकी चीज है। दृष्टान्त देकर समझाया जाता है। सब माताएँ चाहती हैं कि श्रीस्वामीजी महाराज हमारी ही भिक्षा लें। श्रीस्वामीजीको बढ़िया देना चाहती हैं, औरोंको घटिया। यह भाव कुछ अंशमें अच्छा है, परन्तु उच्चकोटिके भावके सामने यह बहुत नीचा है। गम्भीरतासे सोचना चाहिये कि श्रीस्वामीजी महाराजको बढ़िया-से-बढ़िया भिक्षा देनेपर देनेवाले,

लेनेवाले, देखनेवाले तीनों गिरते हैं। कारण यह है कि देनेवाला भेदबुद्धिके कारण, लेनेवाला (लोगोंपर यह असर होता है कि इन्हें माल चाहिये) बुरे भावके कारण, देखनेवाले अपने दृष्टिदोषके कारण अपना पतन करते हैं, किन्तु श्रीस्वामीजी महाराज तो समझते हैं, इसलिये नहीं लेते।

रसोई बनानेमें भेदभाव नहीं करना चाहिये। गाय, कुत्ता, कौआ, चींटी, साधू तथा घरवाले जितने प्राणी हैं उनको जो कुछ भी हिस्सा दिया जाय, एक-सी चीज होनी चाहिये। जो बलिवैश्वदेव करता है वह सारे संसारको भोजन करानेके फलको प्राप्त करता है। सब पापोंसे छूट जाता है।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

(गीता ३। १३)

यज्ञसे शेष बचे हुए अन्नको खानेवाले श्रेष्ठ पुरुष सब पापोंसे छूटते हैं और जो पापी लोग अपने शरीर-पोषणके लिये ही पकाते हैं वे तो पापको ही खाते हैं। समताके भावसे भी उच्चकोटिका भाव त्यागका है। त्यागके भावको सब अपनायें तो सबको लाभ हो। देनेवाले, लेनेवाले और देखने-सुननेवाले सबको लाभ होता है। वह त्याग क्या है यह बतलाया जाता है। जो कुछ भी रसोई बने, उससे सबको भोजन करानेके बाद पाँच चीजोंमें यदि दो तीन चीजें बच जायँ, उसमें भी नीचे-ऊपर जली या खुरचन आदि जो भी हो प्रसन्नतापूर्वक पाना अमृत भोजन है। यह त्याग है, क्योंकि इसमें बढ़िया चीज दूसरोंको दी जाती है और घटिया अपने लिये रखी जाती है। यह समतासे उच्चकोटिकी है। इस व्यवहारसे साधुओंपर तो यह असर पड़ता है कि देखो, वह बढ़िया चीज तो हमलोगोंको देते हैं और घटिया

चीज अपने लिये रखते हैं। देखनेवालोंपर भी अच्छा असर पड़ता है अतः सबको लाभ होता है। अतः ऐसा काम न करे जो विष फैलावे। जैसे प्लेगके कीटाणु फैलनेपर चिकित्सा करनेवाले चिकित्सकको भी डर लगता है।

भगवान् अमृतभोजी हैं। द्रौपदीके यहाँ आये और कहा भूख लगी है। कुछ खानेके लिये हो तो लाओ। द्रौपदीने कहा—इस समय तो कुछ नहीं। सूर्यके दिये हुए पात्रको भी मैंने साफ करके रख दिया है। भगवान्ने कहा उसे एक बार ले आओ। वह ले आयी। भगवान्ने देखा एक पत्ता लगा हुआ है। भगवान्ने कहा यही तो यज्ञशेष है, यही अमृत है। अतः उसीको खाया और तृप्त हो गये और उनके तृप्त होनेसे समस्त संसार तृप्त हो गया।

सच्चे महात्मा संसारमें बहुत कम हैं। राजाके स्थानपर बैठकर प्रजासे, गुरुके स्थानपर बैठकर शिष्यसे, माता-पिताके स्थानपर बैठकर पुत्रसे चाहे जो सेवा करा सकता है, किन्तु यदि कोई साधारण मनुष्य महात्माके स्थानपर बैठकर उसका नेगचार करवाये तो वह न तो भगवान्को ही सुहाता है और न मुझे ही। मैं तो उसकी निन्दा करता हूँ। जो भगवान्की भक्तिका प्रचार करता है और अपनी मान, बड़ाई चाहता है, वह भगवान्को कैसे अच्छा लगेगा? यदि कोई दलाल हमारी दूकानकी उन्नतिके लिये प्रचार करता है तो वह हमें अच्छा लगता है, किन्तु वह यदि हमारी दुकान हड़पनेके लिये हमारी प्रशंसा करता है तो वह हमको बुरा लगता है और हम उसको निकाल देंगे। इसलिये जो सच्चे भक्त ज्ञानी महात्मा होते हैं वे इन बातोंसे बहुत दूर रहते हैं।

कोई यदि यह कहे कि महात्माके दर्शनकी, चरण-रजकी महिमा शास्त्रोंने गायी है सो क्या बात है। उत्तर यह है कि बात तो ठीक है, परन्तु सती तो शाप देती नहीं और कुसतीका लगता

नहीं। जो महात्मा हैं वे तो चरणरज देते नहीं और जो महात्मा नहीं हैं, उनकी चरणरजसे कुछ होता नहीं। कोई कहे कि हम उनके मना करनेपर भी चोरीसे या जबरदस्तीसे तो ले सकते हैं, सो यह समझना चाहिये कि डाका डालनेवालेकी जो दशा होती है, वही दशा तुम्हारी होगी। यदि चोरीसे प्राप्त हुई वस्तु मुक्तिदायक भी हो तो भी उस मुक्तिका त्याग कर देना चाहिये। भूखा रहना या भीख माँगकर खा लेना अच्छा है, पर अन्यायकी कमाई कामकी नहीं है। यदि महात्माकी चरणरजसे दूसरोंका कल्याण होता हो तो महात्मा मना क्यों करते, यह सोचना चाहिये। जैसे थोड़ी देरके लिये हम श्रीस्वामीजी महाराजको महात्मा मान लें। कोई उनका चरण धोनेके लिये आवे और स्वामीजी महाराज अपना चरण आगे कर दें तो उस चरण धोनेवालेकी जो श्रद्धा पहले थी, वह श्रद्धा चरण धोनेके बाद कम हो जाती है।

अतः यह सोचना चाहिये कि चरणरज देनेमें लाभ है या नहीं देनेमें। यदि महात्माके प्रति आपके मनमें भाव है तो वह भाव चरणरज नहीं देनेपर और भी ज्यादा बढ़ सकता है और वह महात्माको क्रियासे प्रणाम न करके मनसे प्रणाम करता है, जिससे उसको और भी ज्यादा लाभ होता है।

महात्मा चरणरज नहीं देते, उसपर लोग नाना प्रकारकी कल्पनाएँ अपने मनमें कर लेते हैं। उनसे पूछा जाता है कि आप चरणरज क्यों नहीं देते। वे कहते हैं हमारेमें सामर्थ्य नहीं है (क्योंकि लोग दुरुपयोग करेंगे)।

कोई यह कहे कि आप महात्माओंकी सामर्थ्य तो मानते हैं कि उनकी चरणरजसे लाभ होता है। उसका उत्तर यह है कि महात्माओंकी सामर्थ्य तो इससे भी ज्यादा मानते हैं। उनके तो

दर्शन, स्मरण, चिन्तनमात्रसे ही कल्याण हो जाता है, फिर चरणरजके स्पर्शकी तो बात ही क्या है। महिमा तो इससे भी ज्यादा है। उनका शरीर चला जानेके बाद भी उनसे लाभ होता ही रहता है। जैसे तुलसीदासजीके ग्रन्थोंके द्वारा अभी भी जगत्‌के अनेक नर-नारियोंका कल्याण हो रहा है।

क्या कोई ऐसा महात्मा अभीतक नहीं हुआ, जिसके द्वारा सारे संसारका उद्धार हो जाता? महात्मा तो बहुत हुए, किन्तु कल्याण चाहनेवाले नहीं थे। गंगासे सबका उद्धार हो सकता है। पर कोई पास नहीं जावे तो गंगा क्या करे। अतः उनकी तो जितनी सामर्थ्य मानी जाय उतनी ही थोड़ी है। महात्मा अपनी शक्तिका प्रयोग भी भक्तकी इच्छा होनेपर ही करता है। जब वे यह समझते हैं कि मेरी चरणरजसे इनकी मुक्ति हो जायगी, वहाँपर वे कंजूसी भी नहीं करते। चरणरजकी इच्छावालेको तो यह समझना चाहिये कि मैं पात्र नहीं हूँ और महात्मा यह समझे कि मैं इतना योग्य नहीं हूँ कि चरणरज दूँ।

परमात्माके स्थानपर बैठकर अपनेको भगवान् बतलाकर, अवतार बतलाकर जो अपनी पूजा करनेका प्रचार करे, अपने हाड़-मांसके पुतलेको पुजवाये, वह तो पापका भागी होता है, नरकोंमें जाता है, उच्चकोटिके भक्त तो भगवान्‌को पुजवाते हैं और जो अपने भक्त हैं वे अपनेको पुजवाते हैं।

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

❑❑

स्वार्थत्यागकी महिमा

एक बहुत महत्त्वकी बात समझानेके लिये एक कहानी कही जाती है। इसमें दो तत्त्व हैं बुद्धिमानी और परमात्मतत्त्व। परमात्मतत्त्व तो ठीक है, किन्तु बुद्धिकी बातको सांसारिक विषयमें न लगाकर परमात्माके विषयमें, आत्माके उद्धारके विषयमें लगाना चाहिये।

एक ब्राह्मण थे, वे पढ़ाया करते थे। एक दिन उनके पास एक ब्राह्मण अपने दो लड़कोंको लेकर आया। गुरुजीने कहा मैं तो वेतन लेकर पढ़ाता हूँ। ब्राह्मणने कहा मेरे पास बिलकुल पैसा नहीं है। गुरुजीने कहा एक काम हो सकता है, मेरे कोई संतान नहीं है, पढ़नेके बाद एक लड़का मुझे दे दो। ब्राह्मण देवताने स्वीकार कर लिया और कहा कि जो लड़का अच्छा होगा उसको मैं लूँगा। गुरुजीने कहा ठीक है। गुरुजीने दोनोंको पढ़ाया। छोटा लड़का बुद्धिमान् था, विवेकी था, बड़ा लड़का मूर्ख था। गुरुजीने दोनोंको **'अहिंसा परमो धर्मः'** का उपदेश दिया। तुलसीदासजीने कहा है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

अतः किसीको कभी भी किंचित् कष्ट नहीं देना चाहिये। साथ-साथ गुरुजी यह भी समझाते कि परमात्मा आकाशकी भाँति सर्वत्र समभावसे व्याप्त हैं। एक दिन गुरुजीने दोनोंकी परीक्षाके लिये एक-एक चिड़िया दे दी और कहा—देखो दोनों एक-एक चिड़ियाको ले जाओ, जहाँ कोई न देखे ऐसे स्थानमें मार डालो। दोनों लेकर चले। बड़ा लड़का तो एक गुफामें जाकर चिड़ियाको मारकर गुरुजीके पास आ गया। छोटे लड़केने विचार

प्रवचन—मिति वैशाख शुक्ल १५, संवत् २००८, प्रातः १० बजे, वटवृक्ष, स्वर्गाश्रम।

किया कि '**अहिंसा परमो धर्मः**' अतः इसे मारना उचित नहीं है और भगवान्‌को सर्वव्यापक बतलाया गया है, ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ भगवान् नहीं हों। गुरुजीने कहा है कि जहाँ कोई न देखे वहाँ मार डालो, ऐसा स्थान तो मिल नहीं सकता जहाँ भगवान् न हों। अतः वह चिड़ियाको बिना मारे ही वापस ले आया। गुरुजीने पूछा तो बड़े लड़केने कहा कि निर्जन स्थानमें एक गुफामें ले जाकर मार डाला, वहाँ कोई नहीं देख रहा था। छोटे लड़केसे पूछा तो उसने कहा कि आपका उपदेश था '**अहिंसा परमो धर्मः**' और भगवान् सर्वव्यापक हैं। चिड़ियाको मारनेमें हिंसा होती तथा ऐसा कोई स्थान नहीं मिला जहाँ भगवान् नहीं हों, क्योंकि वे सर्वव्यापक हैं, इसलिये नहीं मार सका। बड़े लड़केने कहा मैं नहीं मारता तो आपकी आज्ञाका उल्लंघन होता। गुरुजीने कहा जरा सोचो तो सही, मैं नित्यप्रति तुम्हें '**अहिंसा परमो धर्मः**' का उपदेश देता था, यह आज्ञा न मानकर यह आज्ञा कैसे मान ली। यह भी कहा था कि जहाँ कोई न देखे ऐसे स्थानमें मारना। भगवान् तो सर्वव्यापक हैं ही, उनकी आँखें तो सब जगह हैं, क्योंकि वे सर्वत्र हैं। बड़े लड़केको अपनी भूल मालूम दी। गुरुजीने फिर एक कथा सुनायी—

ऋभु नामके एक गुरु थे। निगाध नामका उनका शिष्य था। गुरुजीने शिष्यको उपदेश दिया कि भगवान् सब प्राणियोंमें विराजमान हैं, सबको भगवद्-रूप समझकर उनका आज्ञापालन करना चाहिये। एक दिन शिष्य कहीं जा रहा था, रास्तेमें एक हाथी आ रहा था, उसपर बैठा हुआ महावत कह रहा है हटो-हटो। शिष्यने सोचा सब प्राणियोंमें भगवान् हैं, अतः हाथी भी भगवान् है, फिर डरनेकी क्या आवश्यकता है ? वह हटा नहीं। हाथी पास आ गया और उसे सूँडमें लपेटकर फेंक दिया। शिष्यके चोट आयी, उसने गुरुजीसे

सारा हाल कहा और बोला, आपने मुझे सब प्राणियोंको भगवद्-रूप होनेके कारण उनसे निर्भय रहनेके लिये कहा था, जिसके कारण मुझे चोट आयी। गुरुजीने सारा हाल जानकर कहा कि मैंने तुम्हें यह भी कहा था कि सब प्राणियोंको भगवद्-रूपका मानो। तुमने केवल हाथीको ही भगवद्रूप कैसे माना। महावत भी तो भगवान्‌का रूप है। उसकी बात मान लेते तो चोट नहीं आती। शिष्यने अपनी भूल स्वीकार की।

यह कथा कहनेके बाद गुरुजीने छोटे लड़केको आशीर्वाद दिया और कहा कि मैंने तुमलोगोंकी परीक्षा ली थी, तुम परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये। बड़े लड़केने धर्मके तत्त्वको, उपदेशको नहीं समझा, वह अनुत्तीर्ण हो गया।

एक दिन गुरुजीने दोनों लड़कोंको एक-एक टोपियाँ दिया, कहा कि इनको चुपड़वा लाओ। बड़े लड़केने टोपियाँ लेकर दुकानदारके पास जाकर कहा—गुरुजीने इसको चुपड़वाकर मँगाया है, किसीने नहीं चुपड़ा। इधर छोटा लड़का दुकानदारके पास गया, एक सेर घी तुलवाया, तुलवानेपर उसने घी सूँघकर कहा इसमें तो गंध आती है, लेता जाता हूँ, गुरुजीको पसन्द नहीं आया तो आपको वापस लेना पड़ेगा। दुकानदारने कहा वापस नहीं करूँगा। लड़केने कहा मेरे पास पैसा नहीं है, तुम वापस कर लो। दुकानदारने अच्छी तरह पोंछकर टोपियाँ वापस दे दिया, किन्तु कितना ही पोंछे टोपियाँ तो चिकना हो ही गया, वह तो चुपड़ गया। गुरुजीके पास जाकर दोनोंने हाल बता दिया। गुरुजी छोटेपर बहुत खुश हुए, कहा तू बड़ा बुद्धिमान् है।

जिस प्रकार छोटे लड़केने अपनी बुद्धि लौकिक स्वार्थमें लगायी, उसी प्रकार हमको पारमार्थिक विषयमें लगानी चाहिये, उससे परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र ही हो जाती है।

कुछ दिन बाद लड़कोंका पिता आया। गुरुजीने दोनों लड़कोंको तैयार कर दिया। बड़े लड़केको अपने घरके आभूषण भी पहना दिये थे। जब पिता आया तब छोटे लड़केने शौचके बहाने पिताको ले जाकर सारा हाल कह दिया। सब इकट्ठे हुए, तब गुरुजीने कहा बड़े लड़केको मैंने अपने घरके आभूषण भी पहना दिये हैं, यह भी साथ जायगा। पिताने कहा मैं तो छोटा लड़का ही लूँगा। गुरुजी समझ गये कि यह छोटे लड़केकी करतूत है। पूछा तब कहा मैंने तो पिताजीसे कहा था कि मैं आपकी सेवा करूँगा, आप मुझे ले लें। पिता छोटे लड़केको ले गये।

हमलोगोंको अपनी बुद्धि परमात्मतत्त्वको जाननेमें एवं स्वार्थत्यागमें लगानी चाहिये। बुद्धि स्वार्थमें लगानेसे नरक और स्वार्थत्यागमें लगानेसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है, इसपर एक घटना कही जाती है—

देहरादूनमें एक वैश्य थे, जिनका नाम बलदेवदासजी था। वे दो भाई थे। सब प्रकारसे सम्पन्न थे, जमीन, जायदाद, धन उनके पास खूब था। भगवान्‌के भक्त थे। दुःखी, अनाथकी सेवा किया करते थे। दोनों भाइयोंमें जो बँटवारा हुआ, वह आदर्श था। उन्होंने अपने गाँव बाँटे, अन्तमें एक गाँव बच गया। छोटे भाईने बड़े भाईको लेनेको कहा, बड़ेने छोटे भाईको लेनेको कहा। सगे-सम्बन्धियोंने बहुत समझाया, पर किसीकी युक्ति पेश नहीं आयी। उस समय कलकत्तेमें लक्ष्मीनारायणजी मुरोदिया फैसला करनेमें प्रसिद्ध थे। उनको बुलाया गया। वे आये, उनके आते ही दोनों भाइयोंने अलग-अलग ले जाकर कहा—मुझको न दिलाना दूसरेको दिलवाना। उन्होंने बड़े भाईको समझाया कि एक बार तो यह गाँव तुमको लेना पड़ेगा। फिर तुम छोटे भाईके लड़केको बुलाकर पूछना तुम किसके लड़के हो? स्वाभाविक वह कहेगा

आपका हूँ। फिर उसके पिताको भी पूछना वह भी यह कहेगा कि आपका है, तब तुम उस लड़केको चाहे जितना गाँव दे देना। ऐसा ही किया और बड़े भाईने छोटे भाईके लड़केको बुलाकर एकके बदले दो गाँव दे दिये। दोनों खुश हो गये।

ऐसी बुद्धि मुक्तिदायक है। इसे इसी प्रकार लगाना ही स्वार्थ-त्यागमें लगाना है। स्वार्थमें लगाना तो कलंक है, तुच्छता (नीचापन) है। इसका उदाहरण भी नीचे दिया जाता है—

दो भाई थे, दोनोंका आपसमें बड़ा प्रेम था। बड़ा भाई बाहरसे दो आम लाया। दोनों आम बढ़िया थे। एकमें थोड़ा दाग था। आम लेकर आते समय दोनों भाइयोंके लड़के दौड़कर आये। जिस तरफ छोटे भाईका लड़का था, उस तरफका आम अच्छा था, जिस तरफ उसका लड़का था उस तरफ दागवाला आम था। उन्होंने हाथको फेरकर दोनों लड़कोको आम दे दिये। छोटा भाई सामने ही दातुन कर रहा था। उसने देखा यह हाथ क्यों फेरा। पास आकर देखा तो मालूम हुआ कि मेरे लड़केके आममें थोड़ा दाग है, उसके लड़केके आममें दाग नहीं है। जब दोनों भाई रातको इकट्ठे हुए, छोटे भाईने बड़े भाईसे कहा—भाईजी अपने अभी बँटवारा कर लें तो मरनेके बाद लड़के लड़ेंगे नहीं। बड़े भाईने कहा मैं तुम्हें पुत्रके समान मानता हूँ, तुम मुझे पिताके समान मानते हो। आज यह क्या बात है, क्या कह रहे हो। छोटे भाईने बहुत टालमटोल किया, आखिरमें बड़े भाईके बहुत आग्रहपर बात कहनी पड़ी। उसने कहा कि आप कल आम लाये थे, तब आपने हाथ क्यों पलटा। बड़ा भाई अपनी गलती समझ गया, कहा तुम ध्यान मत दो। छोटे भाईने कहा आज आपने मेरे जीतेजी *अधेलेके फरकके लिये अपनी अधेलेकी इज्जत कर ली

* आधे पैसेको अधेला कहते हैं।

तो मेरे मरनेके बाद न मालूम क्या होगा। उन लोगोंका बँटवारा हो गया। यह स्वार्थबुद्धि है और यह नरकमें ले जानेवाली है।

यदि कोई अपनी आत्माका उद्धार करना चाहे तो उसे अपनी बुद्धिको सदा सर्वदा स्वार्थत्यागमें ही लगाना चाहिये। नरकमें जानेके लिये, स्वार्थी बननेके लिये शिक्षा देनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि सारे जगत्‌में स्वार्थ है। तुलसीदासजी कहते हैं—

स्वारथ मीत सकल जग माहीं । सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं ॥
सुर नर मुनि सब कै यह रीती । स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥

देवता, मनुष्यकी तो बात ही क्या है ऋषियोंके लिये भी कहा है कि वे स्वार्थके लिये ही प्रेम करते हैं। परमार्थकी तरफ लगानेवालोंकी संख्या बहुत कम है और उनमें भी परमात्माके तत्त्वको जाननेवाला तो कोई बिरला ही होता है। भगवान् कहते हैं—

मनुष्याणां सहस्त्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥

(गीता ७। ३)

हजारों मनुष्योंमें कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है उन यत्न करनेवालोंमें कोई ही पुरुष मेरेको तत्त्वसे जानता है। स्वार्थत्याग करके प्रीति करनेवाले तो दो ही हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी । तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी ॥

अतः स्वार्थ त्याग कर कार्य करना चाहिये। अपनी बुद्धिको भी उसी काममें लगाना श्रेष्ठ है। एक कथा और आती है—

एक किसान था, जातिका क्षत्रिय था, खेतीके अन्नसे जीविका चलाता था। वह सदाचारी, स्वार्थत्यागी, सात्त्विक पुरुष था। एक बार हल चलाते समय जमीनसे एक घड़ा निकला, जिसमें सोना, अशर्फी इत्यादि अमूल्य रत्न भरे हुए थे। उस घड़ेको लेकर वह किसान जमीनके मालिक जमींदारके पास गया, कहा यह घड़ा

जमीनके अन्दरसे निकला है, यह आपका है, आप रख लीजिये। जमींदार भी बड़ा स्वार्थत्यागी था, उसने कहा—मैंने जमीन तुम्हें दी है इसमें जो कुछ निकले तुम्हारा है। किसानने कहा आप पट्टा देख लीजिये मेरा अधिकार ऊपरकी चीजका है, जमीनके अन्दर खान वगैरह जो हो उसपर नहीं है। इस प्रकार दोनों एक-दूसरेको देनेकी युक्तियाँ लगाते रहे। अन्तमें फैसला कराने राजाके पास गये। राजाने उनकी बातें सुनकर कहा मेरे पास मेरा-मेरा कहने-वाले तो बहुत आते हैं, परन्तु दूसरेको दो ऐसा कहनेवाला तो कोई आया ही नहीं। राजाने दोनोंको समझाया किसीने नहीं माना। राजा भी स्वार्थत्यागी था, वर्तमानकी तरह होता तो निजमें हड़प लेता। अन्तमें राजाने विचार करके पूछा तुम्हारे कोई संतान है, किसानने कहा मेरे एक लड़की है। जमींदारने कहा मेरे लड़का है। राजाने कहा तुम दोनों योग्य हो, श्रेष्ठ हो, सम्बन्ध कर लो। फिर किसानको एकान्तमें ले जाकर कहा तुम एक बार स्वीकार कर लो और लड़कीके साथ इस धनको दहेजमें दे देना। इस प्रकार राजाने फैसला किया।

ऐसे भावसे दोनोंका कल्याण, दोनोंकी मुक्ति हो जाती है।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं । तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥

गीतामें भी कहा है—

ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥

(गीता १२। ४)

सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत मुझको ही प्राप्त होते हैं।

स्वार्थ-त्याग करके दूसरोंके हितमें रत हो जाना चाहिये। ऐसे पुरुषोंको भगवत्प्राप्ति हो जानेमें कोई सन्देह नहीं है। अपना तन, मन, धन, विद्या, ज्ञान, बुद्धि सबको दूसरोंके कल्याणमें लगा देना

चाहिये। ऐसा करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

एक रहस्यकी बात बतायी जाती है—आपलोग प्रतिदिन व्याख्यान सुनते हैं, पर यदि एक बातका भी पालन करें तो कल्याणमें कोई शंका नहीं। वह एक बात यह है—

अपनी बुद्धिको स्वार्थ-त्यागमें लगा दें तो निश्चय कल्याण हो जाय। इस बातके लिये मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, आप मुझसे लिखा-पढ़ी करा सकते हैं। आप कहें कि क्या भगवान् आपकी बात मानेंगे, यह बात भगवान्‌ने ही कही है—

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥
नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २। ३९-४०)

हे पार्थ! यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञानयोगके विषयमें कही गयी और अब तू इसको कर्मयोगके विषयमें सुन—जिस बुद्धिसे युक्त हुआ तू कर्मोंके बन्धनको भलीभाँति त्याग देगा यानी सर्वथा नष्ट कर डालेगा। इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है; बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर देता है।

जब थोड़ेसे निष्काम कर्मयोगके साधनसे कल्याण हो जाता है तो फिर पूर्ण निष्कामकी तो बात ही क्या है। प्रह्लादने भगवान्‌के विशेष आग्रह करनेपर भी यही माँगा कि मेरेमें कोई कामना हो तो उसका नाश हो जाय। एक भक्तकी बात है—उसपर भगवान् प्रसन्न हुए, भगवान्‌ने कहा वर माँगो। उसने कहा आप स्वयं मिल गये और क्या माँगू? भगवान्‌ने कहा कुछ तो

माँगो। भक्तने कहा वर देना चाहते हैं तो सबका कल्याण-उद्धार कर दीजिये। भगवान्‌ने कहा यह कैसे हो सकता है। पुण्य तो भगवदर्पण करनेसे समाप्त हो सकता है, जिस प्रकार रुपयोंका दान कर देनेसे वह समाप्त हो सकते हैं, परन्तु पाप तो ऋणकी तरह है। यह दान कैसे हो सकता है। ऋण तो चुकाना ही पड़ता है, अत: पाप कौन भोगेगा। भक्त बोला आप सबका उद्धार कर दीजिये फिर आप और मैं दो बचेंगे, आप भुगतावें और मैं भोगूँ। मैं सबके हिस्सेका पाप भोगूँगा। भगवान्‌ने कहा तू तो भक्त है, तुझे पाप कैसे भुगताया जाय। भक्तने कहा तब सबका उद्धार कर दीजिये। भगवान्‌ने कहा यह तो असंभव है। भक्तने कहा आप तो असंभवको भी संभव करनेवाले हैं, यदि नहीं कर सकते तो आपने यह किस प्रकार कहा कि तू चाहे सो माँग। भगवान्‌ने कहा मैं हारा तू जीता। भक्तने कहा ऐसी जीतका मैं क्या करूँ, मेरा वरदान भी पूरा नहीं हुआ और जीत भी मानूँ। मेरी जीत तो तभी होती जब सारे संसारका उद्धार हो जाता। इस जीतको तो आप ही रखिये। भगवान्‌ने कहा इतना तो कर सकता हूँ जैसे मेरे दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन आदिसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है, वैसे ही तेरे भी स्पर्श, भाषण, वार्तालाप, चिन्तन आदिसे मनुष्यका कल्याण हो जायगा। भक्त बोला बहुत अच्छा, जितना देंगे उतना ही ठीक है। जिसके हृदयमें संसारके कल्याणकी भावना होती है उसे ही ऐसा अधिकार मिलता है। वे पुरुष फिर कारकरूपमें संसारमें आते हैं। जैसे वेदव्यासजी, नारदजी आदि। फिर यहाँ आकर संसारका कल्याण ही करते हैं। श्रीतुलसीदासजी अपने जीवनकालमें उपदेशसे लोगोंका कल्याण करते ही थे, मरनेके बाद भी ऐसे ग्रन्थ छोड़ गये, जिनके अनुष्ठानसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है। ऐसे पुरुष

ही स्वार्थत्यागी हैं, निःस्वार्थभावसे दूसरोंका हित करनेवाले हैं। ऐसे पुरुष उच्चकोटिके भगवत्प्राप्त होते हैं, अतः मनुष्यको उसी प्रकारका बननेका सतत प्रयत्न करना चाहिये।

मैं तो राम, कृष्ण, विष्णु, साकार, निराकार सबको समान समझता हूँ। सतयुगमें विष्णु, त्रेतामें राम, द्वापरमें कृष्ण हुए, मैंने इन तीनोंसे तीन चीजें ग्रहण कीं। ध्यान तो विष्णुभगवान्‌का करता हूँ, चरित्र या आदर्श श्रीरामचन्द्रजीका सामने रखता हूँ और उपदेश श्रीकृष्णचन्द्रजीके मुखसे निकली हुई गीताजीका पालन करता हूँ, अर्थात् उनके अनुसार आचरण करना चाहता हूँ।

मेरे पास द्वैत और अद्वैत दोनों प्रकारके उपासक आते हैं। उसका भी कारण यही है कि मैं दोनोंका ही विवेचन करता हूँ। केवल अद्वैतका वर्णन करूँ तो द्वैतवाले, भक्तिमार्गवाले मेरे पास क्यों आवेंगे? उसी प्रकार केवल विष्णु भगवान्‌के ध्यानकी बात कहूँ तो राम, कृष्णके उपासकोंकी मेरे पास आनेकी रुचि नहीं होगी। अतः मैं उनके लाभसे वंचित रह जाऊँगा। मैं तो ईश्वर और अल्लाको भी एक ही समझता हूँ। मुसलमान मेरे व्याख्यानमें प्रायः नहीं आते। इसका विशेष कारण यही है कि मैं अल्ला, खुदाका इतना प्रचार नहीं करता। यद्यपि मेरी दृष्टिमें दोनों समान हैं, पर कोई ग्राहक आनेपर ही उसके पसन्दकी बात कही जाती है। कोई नहीं आवे तब किससे कहूँ। यदि कोई मुसलमान मुझसे पूछे कि किसका जप, ध्यान करें तो मैं कहूँगा अल्ला-खुदाका करो, क्योंकि उसकी इसमें ज्यादा रुचि होगी और उन्नति भी जल्दी होगी।

सब घड़ी सुघड़ी है सब वार सुवार।
भद्रा भागी नानका जो सुमिरा करतार॥

ॐ शान्तिः! शान्तिः! शान्तिः!

□□